साधना-शिविर : माथेरान

८ जनवरी १९७२ से १६ जनवरी १९७२ तक

आत्मज्ञान एवं ज्ञानतत्त्व की उपलब्धि के लिए लालायित
प्रेमी जिज्ञासुओं के लाभार्थ

आचार्य श्री के सान्निध्य में

आयोजित प्रकृति-स्थली माथेरान के साधना शिविर में सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवाले महानुभाव जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

जीवन जागृति केन्द्र
३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, **बम्बई-९**
फोन : ३३९५६०-३२७६१८

माउंट आबू : ध्यान शिविर

आचार्य श्री रजनीश के सान्निध्य में

इस शिविर में ध्यान के प्रयोग और आध्यात्मिक प्रवचन का कार्यक्रम आयोजित किया गया है

३१ मार्च १९७२ से ८ अप्रैल १९७२ तक

शिविर में सम्मिलित होने की लालसा रखने वाले महानुभाव विस्तृत जानकारी के लिए नीचे लिखे पते पर सम्पर्क स्थापित करें :

जीवन जागृति केन्द्र
म्युनिसिपल स्कूल के सामने, खाड़िया चार रास्ता,
अहमदाबाद-१
फोन : २४०८३

भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

युक्रान्त

जनवरी १९७२

वर्ष – ३ अंक – १३ : १४

मूल्य एक प्रति : [redacted]
,, वार्षिक : [redacted]

युक्रान्द

जनवरी १९७२

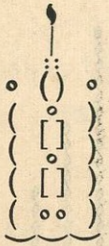

मानसेवी—

सम्पादक :
अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे
'आकुल' राजेन्द्र

सौ० सम्पादक :
कनु शेठ

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

पृष्ठ :

३ एक संक्रमण कालीन संन्यास की धारणा — संकलन : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

९ संन्यास के कदम परमात्मा की ओर — ,, ,, ,, ,,

१३ 'जीवन ही है प्रभु' — संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

३२ साधक का पत्र भगवानश्री को — प्रेमकुमार गांधी

३३ भगवान श्री द्वारा प्रेमियों को लिखे गये पत्र

३९ ज्योतिष-गणना — प्रस्तुतकर्ता : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

५६ एक और जन्म (संस्मरण) — साधु राजनारायण भारती

६४ प्रतिभावान् अध्यात्मिक व्यक्तित्व : आचार्य श्री रजनीश जी — पंडित शरद शर्मा

६९ नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय के बढ़ते चरण — रिपोर्ताज़

गीत : काव्य

१ दो अनुभूतियां — स्वामी अमृत परमहंस

३८ भोर-प्रात वो क्या जाने — 'आकुल' राजेन्द्र

५५ भगवान श्री रजनीश के चरणों में — स्वामी अमृत सिद्धांत

नोट :

संकीर्तन-मंडली कार्यक्रम — पृष्ठ ७६

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट–टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर.

दो अनुभूतियां

अनुग्रह

स्वयं की हीनता में
सिसकता—एक पक्षी, धरा पर
रेंग रहा था—भयभीत, मृत्यु से.
घबरा गया
अकस्मात् वायु के तीव्र, झोंके ने
धरा से उठाया
और—
छोड़ दिया आरोह पर...!

भय से अवरोह के—
खुल गये पंख, हिल गये पंजर
खुले आकाश से
हो गई, मित्रता...!
और फिर
पूर्णतः अनुग्रह से
पुकार उठा—
हृदय, धन्य हूं मैं-
अपार है !
अपार है !!
तेरी अनुकम्पा !!!

ज्ञात और अज्ञात

गतिमान कर रहा था, वासना को—
दौड़ती कामनाओं का, एक झुर्मुट—
कोलाहल भरे वातावरण में पूछ बैठा
स्वयं से— अमृत यही है···क्या यही जीवन है ?

शून्य से झांककर करुणा भरे स्वर में—
कोई कह रहा था···
ज्ञात में चप्पू चलाते क्या बनेगा ?

आमंत्रित करते अमृत भरे
अज्ञात सागर में
सभी कुछ तो ससत् बह रहा है.
खोल दो पालें, नाव—स्वयं बहेगी.
तट तो छोड़ो और देखो अज्ञात को.
कर दिया समर्पित स्वयं को—अज्ञात के
और पाया शान्त···सब कुछ शान्त···
आनंद से जीवन सुगंधित हो उठा
वस्तुतः ...यही जीवन है...!

—स्वामी अमृत परमहंस
(श्री ठाकुर दास, नई दिल्ली–१८)

००

जो स्वयं को खोकर सब कुछ भी पाले, उसने बहुत महंगा सौदा किया है। वह हीरे देकर कंकड़ बीन लाया है। उससे तो वही व्यक्ति समझदार है जो कि सब कुछ खोकर भी स्वयं को बचा लेता है।

एक बात स्मरण रखना कि स्वयं की सत्ता से ऊपर और कुछ नहीं है। जो उसे पा लेता है, वह सब पा लेता है और जो उसे खोता है उसके कुछ भी पा लेने का कोई मूल्य नहीं है।

००

आनन्द तो हर जगह है पर उसे अनुभव कर सकें ऐसा हृदय सबके पास नहीं है। और कभी किसी को आनन्द नहीं मिला है, जब तक कि उसने उसे अनुभव करने के लिए अपने हृदय को तैयार न कर लिया हो। विशेष स्थिति और स्थान नहीं—वरन् जो आनन्द अनुभव करने की भावदशा को पा लेता है उसे हर स्थिति में और स्थान में ही आनन्द मिल जाता है।

———

"एक संक्रमण कालीन संन्यास की धारणा"

संकलन : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

(द्वितीय गीता-ज्ञान-यज्ञ: बम्बई में रात्रि दिनांक २ जनवरी, १९७१ को भगवान श्री रजनीश द्वारा दिये गये प्रश्नोत्तर-प्रवचन का यह एक अंश है। 'नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय' आन्दोलन को एक नये आयाम से समझने में यह उपयोगी होगा। —सम्पादक)

● **भगवान श्री, चार वर्णाश्रम की आपने चर्चा की और उनके अंतर्गत उम्र का विभाजन भी किया। संन्यास आश्रम चौथी अवस्था में आता है, लेकिन आप आज कल छोटी उम्र के लोगों को भी संन्यास की दीक्षा दे रहे हैं ?**

जीवन का एक क्रम है और संन्यास उसमें अंतिम अवस्था है, लेकिन यह क्रम टूट गया। और अभी तो ब्रह्मचर्य भी अंतिम अवस्था नहीं है। ब्रह्मचर्य पहली अवस्था थी। उस क्रम में यह क्रम टूट गया। अब तो ब्रह्मचर्य अंतिम अवस्था भी नहीं है। पहले की तो बात ही छोड़ दें। मरते क्षण तक आदमी ब्रह्मचर्य की अवस्था में नहीं पहुंचता। **अब तो संन्यास कब्र के आगे ही कोई व्यवस्था होगी। और जब बूढ़े ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होते हों तो मैं कहता हूं, बच्चे को भी हिम्मत करके संन्यास लेना चाहिए। 'जस्ट टु बेलैन्स', संतुलन बनाये रखने को।**

जब बूढ़े भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होते हों तो बच्चों को भी संन्यासी होने का साहस करना चाहिए **तो शायद बुड्ढों को भी शर्म आनी शुरू हो** अन्यथा बुड्ढों को शर्म आने वाली नहीं है—एक तो इसलिए।

और दूसरी बात—जीवन का जो क्रम है उस क्रम में बहुत-सी बातें अन्तर्गर्भित (एम्पलाइड) हैं। जैसे महावीर ने अंतिम अवस्था में संन्यास नहीं लिया, बुद्ध ने अंतिम अवस्था में संन्यास नहीं लिया क्योंकि जिनके जीवन की पिछले जन्म की यात्रा जहां पहुंच गई है वहां से इस जन्म में शुरू से ही संन्यास

हो सकता है। वे पचहत्तर वर्ष तक प्रतीक्षा करें यह बेमानी है। यही जन्म सब कुछ नहीं है। हम इस जन्म में कोरे कागज की तरह पैदा नहीं होते हैं। हम सब 'बिल्ट-इन प्रोग्राम' लेकर पैदा होते हैं। हमने पिछले जन्म में जो भी किया, जाना, सोचा और समझा है वह सब हमारे साथ जन्मता है। इसलिए जीवन के साधारण क्रम में यह बात सच है कि आदमी चौथी अवस्था में संन्यास को उपलब्ध हो लेकिन जो लोग **पिछले जन्म से संन्यास का गहरा अनुभव** लेकर आये हों या जीवन के रस से पूरी तरह 'डिस-इल्यूजन्ड' होकर आये हों उनके लिए कोई भी कारण नहीं है। लेकिन वे सदा अपवाद होंगे।

इसलिए बुद्ध और महावीर ने अपवाद के लिए मार्ग खोजा। कभी-कभी नियम भी बन्धन बन जाते हैं, इसलिए हमें अपवाद छोड़ना पड़ता है। आईन्स्टीन को अगर हम गणित उसी ढंग से सिखायें जिस ढंग से हम सबको सिखाते हैं तो हम आईन्स्टीन की शक्ति को जाया करेंगे। अगर हम मोंझार्ट को उसी तरह संगीत सिखायें जिस तरह हम सबको सिखाते हैं तो हम शक्ति खोते जायंगे। मोंझार्ट ने तीन साल की उम्र में संगीत में वह स्थिति पा ली जो कोई भी आदमी अभ्यास करके तीस साल में नहीं पा सकता। मोंझार्ट के लिए हमें अपवाद बनाना पड़ेगा। बीथोवन ने सात साल में संगीत में वह स्थिति पा ली जो कि संगीतज्ञ सत्तर साल की उम्र में भी नहीं पा सकते। तो बीथोवन के लिए हमें अलग नियम बनाने पड़ेंगे। इनके लिए हमें नियम वही नहीं देने पड़ेंगे।

इसलिए हर नियम के अपवाद तो होते ही हैं और अपवाद से नियम टूटता नहीं, सिर्फ सिद्ध होता है। 'एक्सेप्शन प्रूव्ज द रूल'—वह जो अपवाद है वह सिद्ध करता है कि नियम सत्य है। इसलिए शेष सबके लिए नियम अनुकूल है। तो ऐसा नहीं है कि भारत में बचपन से संन्यास लेने वाले लोग नहीं थे, लेकिन वे अपवाद थे।

पर आज तो अपवाद को नियम बनाना पड़ेगा। क्यों बनाना पड़ेगा? वह इसलिए बनाना पड़ेगा क्योंकि आज तो स्थिति इतनी रुग्ण और अस्त-व्यस्त हो गई है कि **अगर हम प्रतीक्षा करें कि लोग वृद्धावस्था में संन्यस्थ हो जाएंगे तो हमारी प्रतीक्षा व्यर्थ होने वाली है।** उसके कारण हैं। **वृद्धावस्था में संन्यास तभी फलित हो सकता है जब तीन आश्रम पहले गुजरे हों अन्यथा सफल नहीं हो सकता।** आप कहें कि वृक्ष के फूल आएंगे बसंत में, लेकिन बसंत में फूल तभी आ सकते हैं जब बीज बोये गये हों, जब खाद डाली गयी हो, जब वर्षा में पानी भी पड़ा हो और गर्मी में धूप भी मिली हो। न गर्मी में धूप आई, न वर्षा में पानी गिरा, न बीज बोये गये, न माली ने खाद दिया और बसंत में फूल की प्रतीक्षा कर रहे हैं?

चौथा आश्रम—संन्यास फलित होता है यदि तीन आश्रम नियम-बद्ध रूप से पहले गुजरते हों, अन्यथा फलित नहीं होता। ब्रह्मचर्य बीता हो पच्चीस वर्ष का, गृहस्थ बीता हो पच्चीस वर्ष का, वानप्रस्थ बीता हो पच्चीस वर्ष का तब अनिवार्य रूपेण गणित के हल की तरह चौथा आश्रम का चरण उठता है। आज तो कठिनाई है तीन चरण का कोई उपाय नहीं रहा। दो ही उपाय हैं, एक तो उपाय यह है कि हम संन्यास के सुन्दरतम फूल को, जिससे सुन्दर फूल जीवन में नहीं खिलता है, मुरझा जाने दें, उसे खिलने ही न दें और या हम हिम्मत करें और जहां भी संभव हो सके, **जिस स्थिति में भी संभव हो सके संन्यास के फूल को खिलाने की कोशिश करें**। इसका यह मतलब नहीं है कि सारे लोग संन्यासी हो सकते हैं। असल में **जिसके भी मन में आकांक्षा पैदा होती है संन्यास की, उसका प्राण उसकी सूचना दे रहा है कि उसके पिछले जन्म में कुछ अर्जित है, जो संन्यास बन सकता है।**

फिर मैं यह कहता हूं कि बुरे काम को करके सफल हो जाना भी बुरा है, अच्छे काम को करके असफल हो जाना भी बुरा नहीं है। एक आदमी चोरी करके सफल भी हो जाये तो भी बुरा है। एक आदमी संन्यासी हो के असफल भी हो जाये तो बुरा नहीं है। अच्छे की तरफ आकांक्षा और प्रयास भी बहुत बड़ी घटना है और **अच्छे मार्ग पर हार जाना भी जीत है और बुरे मार्ग पर जीत जाना भी हार है।** और आज हारेंगे तो कल जीतेंगे। **इस जन्म में हारेंगे तो अगले जन्म में जीतेंगे।** लेकिन प्रयास, आकांक्षा, अभीप्सा होनी चाहिए।

फिर चौथे चरण में जो संन्यास आता था उसकी व्याख्या बिलकुल अलग थी और जिसे मैं संन्यास कहता हूं उसकी व्याख्या मजबूरी में अलग करनी पड़ी है—मजबूरी में। चौथे चरण में जो संन्यास आता था वह पूरे जीवन में ऐसे अलग हो जाता जैसे पका हुआ फल वृक्ष से अलग हो जाता है—जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर जाता है। न वृक्ष को खबर मिलती है, न सूखे पत्ते को पता चलता कब अलग हो गए। बहुत 'नेचरल रिननसियेशन' (सहज वैराग्य) था। उसका कारण है। अभी भी पचहत्तर साल का बूढ़ा घर से टूट जाता है, लेकिन न जानते हुए। पचहत्तर साल का बूढ़ा घर में बोझ हो जाता है। कोई कहता नहीं, सब अनुभव करते हैं। बेटे की आंख से पता चलता है। बहू की आंख से पता चलता है, घर के बच्चों से पता चलता है। बूढ़े को विदा होना चाहिए। कोई कहता नहीं। शिष्टाचार कहने नहीं देता। लेकिन अशिष्ट आचरण सब कुछ प्रगट कर देता है। बूढ़ा टूट ही जाता है, लेकिन बूढ़ा हटने को राजी नहीं है। वह भी पैर जमाये रहता है। और जितना

हटाने के आंखों में इशारे दिखाई पड़ते हैं वह उतने जोर से जमने की कोशिश करता है। बहुत बेहूदा है, ऐबसर्ड है। असल में वक्त है हर चीज का जब जुड़ा होना चाहिए, जब टूट जाना चाहिए। वक्त है जब स्वागत है और वक्त है जब अलविदा भी है। समय का जिसे बोध नहीं होता वह आदमी नासमझ है।

पचहत्तर साल की उम्र ठीक वक्त है क्योंकि तीसरी पीढ़ी चौथी पीढ़ी जीने को तैयार हो गई और जब चौथी पीढ़ी तैयार हो गई तो आप कट गए जीवन की धारा से। अब जो नये बच्चे घर में आ रहे हैं उनसे आपका कोई भी तो सम्बन्ध नहीं है। आप उनके लिए करीब-करीब बाधा हैं। आपकी मौजूदगी सिर्फ जगह घेरती है। आपकी बातें सिर्फ कठिन मालूम पड़ती हैं। आपका होना ही बोझ हो गया है। उचित है कि हट जायें—वैज्ञानिक है कि हट जायें। लेकिन नहीं, आप कहां हट के जायें? ख्याल ही भूल गये हैं हटने का। ख्याल इसलिए भूल गये है कि तीन चरण पूरे नहीं हुए अन्यथा बच्चे हटाते उसके पहले आप हट जाते।

जो पिता बच्चों के हटाने के पहले हट जाता है वह कभी अपना आदर नहीं खोता। जो मेहमान विदा करने के पहले विदा हो जाता है वह सदा स्वागत-पूर्ण विदाई पाता है। जो मेहमान डटा ही रहता है जब तक कि घर के लोग पुलिस को न बुला लायें, तब सब अशोभन हो जाता है इससे घर के लोगों को भी तकलीफ होती है, अतिथि को भी तकलीफ होती है और अतिथि का भाव भी नष्ट होता है। ठीक समझदार आदमी वह है कि जब रोक रहे थे तभी विदा हो जाये। जब घर के लोग रोते हों तभी विदा हो जाए, जब घर के लोग कहते हों रुकें, अभी मत जाइये, तभी विदा हो जाए। यही ठीक क्षण है। वह अपने पीछे दूसरों के मन में एक मधुर स्मृति छोड़ जाए। वह मधुर स्मृति घर के लोगों के लिए ज्यादा प्रीतिकर होगी बजाय आपकी कठिन मौजूदगी के। लेकिन वह चौथा चरण था।

तीन चरण जिसने पूरे किये हों और जिसने ब्रह्मचर्य का आनंद लिया हो और जिसने काम का सुख भोगा हो और जिसने वानप्रस्थ होने की, वन की तरफ मुख रखने की अभीप्सा और प्रार्थना में क्षण बिताये हों, वह चौथे चरण में अपने आप, चुपचाप विदा हो जाते हैं।

नीत्से ने कहीं लिखा है— 'राइपननेस इज आल'—पक जाना सब कुछ है। लेकिन अब तो कोई नहीं पकता। पका हुआ आदमी भी लोगों को धोखा देना चाहता है कि मैं अभी बच्चा हूं। मैंने सुना है कि एक स्कूल में

शिक्षक बच्चों से पूछ रहा था कि एक व्यक्ति उन्नीस सौ में पैदा हुआ तो उन्नीस सौ पचास में उसकी उम्र कितनी होगी ? तो एक बच्चे ने खड़ा होकर पूछा कि वह स्त्री है या पुरुष ? क्योंकि अगर पुरुष होगा तो पचास साल का हो गया होगा। अगर स्त्री होगी तो कहना मुश्किल है कितनी साल की हुई हो ! तीस की भी हो सकती है, चालीस की भी हो सकती है, पचीस की भी हो सकती है। लेकिन जो स्त्री पर लागू होता था अब वह पुरुष पर भी लागू है। उसमें कोई फर्क नहीं है।

पका हुआ भी कच्चे होने का धोखा देना चाहता है। बूढ़ा आदमी भी नई जवान लड़कियों से राग-रंग रचाना चाहता है। इसलिए नहीं कि नई लड़की बहुत प्रीतिकर लगती है बल्कि इसलिए कि वह अपने को धोखा देना चाहता है कि मैं अभी लड़का ही हूं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बूढ़े लोग कम उम्र की स्त्रियों में इसलिए उत्सुक होते हैं कि वह भुलाना चाहते हैं कि हम बूढ़े हैं। और कम उम्र की स्त्रियां उनमें उत्सुक हो जायं तो वह भूल जाते हैं कि वे बूढ़े हैं। अगर बर्टेंड रसेल अस्सी वर्ष की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी करता है तो इसका असली कारण यह नहीं कि बीस साल की लड़की बहुत आकर्षक है। अस्सी साल के बूढ़े को आकर्षक नहीं रह जानी चाहिए और साधारण बूढ़े को नहीं, बर्टेन्ड रसेल के हैसियत के बूढ़े को। **हमारे मुल्क में अगर दो हजार साल पहले बर्टेन्ड रसेल पैदा हुआ होता तो अस्सी साल की उम्र में वह महर्षि हो जाता, लेकिन इंग्लैंड में वह अस्सी साल की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी रचाने का उपाय करता है।** वह धोखा दे रहा है। अपने को अभी भी मानने का मन होता है कि मैं बीस ही साल का हूं। और अगर बीस साल की लड़की उत्सुक हो जाए तो धोखा पूरा हो जाता है —'सेल्फ-डिसेप्शन' पूरा हो जाता है।

इस मनोदशा में **संन्यास की नई ही धारणा** का मेरा ख्याल है। **अभी हमें संन्यास के लिए चौथे चरण की प्रतीक्षा करनी कठिन है।** आना चाहिए वक्त जब हम प्रतीक्षा कर सकें। लेकिन वह तभी हो सकता है जब आश्रम की व्यवस्था पृथ्वी पर लौटे। उसे लौटाने के लिए श्रम में लगना जरूरी है। लेकिन जब तक वह नहीं होता तब तक हमें संन्यास की एक नई धारणा पर, कहना चाहिए 'ट्रान्जीटरी कन्सेप्शन' पर, एक संक्रमण की धारणा पर काम करना पड़ेगा। और वह यह कि जो जहां हैं वृक्ष से टूटने की कोशिश न करे क्योंकि पका फल ही टूटता है। लेकिन **कच्चा फल भी वृक्ष पर रहकर अनासक्त हो सकता है। जब पका फल कच्चे होने का धोखा दे सकता है तो कच्चा फल पका होने का अनुभव क्यों नहीं कर सकता ?** इसलिए जो जहां है वहीं संन्यासी हो जाए।

मेरे संन्यास की धारणा जीवन छोड़कर भागने वाली नहीं है। **मेरे संन्यास की धारणा वानप्रस्थ के करीब है**। और मैं मानता हूं कि वानप्रस्थी ही नहीं है तो संन्यासी कहां से पैदा होंगे ? तो मैं जिसको संन्यासी कह रहा हूं वह ठीक से समझे तो वानप्रस्थी ही है। वानप्रस्थी का मतलब है—वह घर में है लेकिन रुख उसका मंदिर की तरफ है। काम में लगा है लेकिन ध्यान किसी दिन काम से मुक्त हो जाने की तरफ है। राग में है, रंग में है फिर भी साक्षी की तरफ उसका मन दौड़ रहा है। उनकी स्मृति परमात्मा के स्मरण में लगी है। इसके स्मरण का नाम ही अभी मैं संन्यास कहता हूं।

यह संन्यास की बड़ी प्राथमिक धारणा है। लेकिन मैं मानता हूं **जैसी आज समाज की स्थिति है उसमें यह प्राथमिक संन्यास ही फलित हो जाए तो हम अंतिम संन्यास की भी आशा कर सकते हैं**। बीज मिट जाय तो वृक्ष की आशा कर सकते हैं। इसलिए जो जहां है उसे मैं वही संन्यासी होने को कहता हूं। घर में, दुकान पर, बाजार में, जो जहां है वहीं संन्यासी होने को कहता हूं—सब करते हुए। लेकिन सब करते हुए भी संन्यासी होने की जो धारणा है, संकल्प है वह सबसे तोड़ देगा। साक्षी पैदा होने लगेगा। आज नहीं कल यह वानप्रस्थ-जीवन संन्यासी-जीवन में रूपांतरित हो जाए ऐसी आकांक्षा और आशा की जा सकती है।

—ooo—

शाश्वत क्षण में छिपा है और अणु में विराट। अणु को जो अणु मान कर छोड़ दे, वह विराट को ही खो देता है। क्षुद्र में ही खोजने से परम की उपलब्धि होती है।

जीवन का प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण है। और किसी भी क्षण का मूल्य किसी दूसरे क्षण से न ज्यादा है, न कम है। आनन्द को पाने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। जो जानते हैं, वे प्रत्येक क्षण को ही आनन्द बना लेते हैं। और जो अवसरों की प्रतीक्षा करते रहते हैं, वे जीवन के अवसर को ही खो देते हैं, जीवन की कृतार्थता इकट्ठी और राशिभूत नहीं मिलती है। उसे तो बिन्दु-बिन्दु और क्षण-क्षण में ही पाना होता है।

एक साधु के निर्वाण पर उसके शिष्यों से पूछा गया था कि दिवंगत सद्गुरु अपने जीवन में सबसे बड़ी महत्वपूर्ण बात कौन सी मानते थे ? उन्होंने उत्तर में कहा था : 'वही जिसमें किसी भी क्षण वे संलग्न होते थे।'

बूंद-बूंद से सागर बनता है और क्षण-क्षण से जीवन। बूंद को जो पहचान ले, वह सागर को जान लेता है और क्षण को जो पा ले वह जीवन पा लेता है।

संन्यास के कदम परमात्मा की ओर

—संकलन : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

(अचौर्य पर भगवान श्री रजनीश द्वारा दिनांक १३ नवंबर १९७० को बम्बई में दिये गये प्रवचन-प्रश्नोत्तर का यह एक अंश प्रस्तुत है। यह सामग्री "नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय" आन्दोलन की आधारभूत धारणा को और स्पष्ट करेगी, ऐसी आशा है। —सम्पादक)

प्रश्नकर्ता : भगवान श्री, आपने कहा है कि बाहर से व्यक्तित्व व चेहरे आरोपित कर लेने से सूक्ष्म चोरी है तथा इससे पाखण्ड और अधर्म का जन्म होता है, लेकिन देखा जा रहा है कि आज कल आपके आस-पास अनेक नये-नये संन्यासी इकट्ठे हो रहे हैं और **बिना किसी विशेष तैयारी और परिपक्वता के आप उनके संन्यास को मान्यता दे** रहे हैं। क्या इससे आप धर्म को भारी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं ? कृपया इसे समझाइए।

भगवान श्री : पहली बात, अगर कोई व्यक्ति मेरे जैसा होने की कोशिश करे तो मैं उसे रोकूंगा, उसे मैं कहूंगा, मेरे जैसा होने की कोशिश आत्मघात है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति स्वयं जैसे होने की कोशिश की यात्रा पर निकले तो मेरी शुभकामनाएं उसे देने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। जो संन्यासी चाहते हैं कि मैं परमात्मा के उनके मार्ग पर उनकी यात्रा का गवाह बन जाऊं, विटनेस बन जाऊं तो उनका गवाह बनने में मुझे कोई एतराज नहीं है, लेकिन **मैं गुरू किसी का भी नहीं हूं। मेरा कोई शिष्य नहीं है, मैं सिर्फ गवाह हूं।** अगर कोई मेरे सामने संकल्प लेना चाहता है कि मैं संन्यास की यात्रा पर जा रहा हूं तो मुझे गवाह बन जाने में कोई एतराज नहीं है, लेकिन अगर कोई मेरा शिष्य बनने आये तो मुझे भारी एतराज है।

मैं किसी को शिष्य नहीं बना सकता हूं। क्योंकि मैं कोई गुरू नहीं हूं। अगर कोई मेरे पीछे चलने आये तो मैं उसे इन्कार करूंगा, लेकिन **कोई अगर अपनी यात्रा पर जाता हो और मुझसे शुभकामनाएं लेने आये तो शुभकामनाएं देने की भी कंजूसी करूं, ऐसा संभव नहीं है।** मैं गैरिक वस्त्र नहीं पहनता। मैंने कोई गले में माला नहीं पहनी हुई है। ये जो संन्यासी आपको दिखायी पड़ रहे हैं उनके द्वारा मेरी नकल का कोई कारण नहीं है।

फिर यह पूछते हैं आप कि किसी को भी बिना उसकी पात्रता का ख्याल किये मैं उसके संन्यास को स्वीकार कर लेता हूं। जब परमात्मा ही हम सबको हमारी बिना किसी पात्रता के स्वीकार किये है तो मैं अस्वीकार करने वाला कौन हो सकता हूं। हम सबकी पात्रता क्या है जीवन में। **और संन्यास के लिए एक ही पात्रता है कि आदमी अपनी अपात्रता को पूरी विनम्रता से स्वीकार करता है।** इसके अतिरिक्त कोई पात्रता नहीं है।

अगर कोई आदमी कहता है कि मैं पात्र हूं, मुझे संन्यास दें तो मैं हाथ जोड़ लूंगा, क्योंकि जो पात्र है उसको संन्यास की जरूरत ही नहीं है। और **जिसे यह ख्याल है कि मैं पात्र हूं वह संन्यासी नहीं हो पाएगा, क्योंकि संन्यास विनम्रता (ह्यूमिलिटी) का फूल है।** वह विनम्रता में फलता है। जो आदमी **पात्रता के सर्टिफिकेट** लेकर परमात्मा के पास जाएगा, शायद उसके लिए दरवाजे नहीं खुलेंगे। लेकिन—जो दरवाजे पर आंसू लेकर खड़ा हो जाएगा और कहेगा मैं अपात्र हूं, मेरी कोई भी पात्रता नहीं है कि मैं द्वार खुलवाने के लिए कहूं; लेकिन फिर भी प्रयास है, आकांक्षा है; फिर भी लगन है, भूख है; फिर भी दर्शन की अभीप्सा है—दरवाजे उसके लिए खुलते हैं।

तो मेरे पास कोई आकर अगर संन्यास के लिए कहता है तो मैं कभी पात्रता नहीं चुनता। क्योंकि **कोई संन्यासी होना चाहता है इतनी इच्छा क्या काफी नहीं है?** जो संन्यासी होना चाहता है **क्या उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना ही काफी नहीं है?** क्या इतनी लगन, अपने को दांव पर लगाने की इतनी हिम्मत काफी नहीं है? और पात्रता क्या होगी? प्यास के अतिरिक्त और प्रार्थना के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? अपने को छोड़ने के अतिरिक्त, समर्पण (सरेंडर) के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है। लेकिन, क्या समर्पण के लिए भी कोई पात्रता चाहिए? **पात्र समर्पण नहीं कर पायेंगे। क्योंकि वे समझते हैं कि वे अधिकारी हैं। लेकिन जिन्हें अपनी अपात्रता का पूरा बोध है वे समर्पण कर पाते हैं।**

परमात्मा के द्वार पर जो असहाय है, अपात्र है, दीन है, अयोग्य है लेकिन फिर भी 'उसकी' प्रार्थना से भरा है—उसके लिए द्वार सदा ही खुला है। लेकिन जो पात्र हैं, सर्टिफाइड हैं, योग्य हैं, काशी से उपाधि ले आये हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं, तपश्चर्या के धनी हैं, उपवासों की फेहरिस्त (सूची) जिनके पास है कि उन्होंने इतने उपवास किये हैं, ऐसे व्यक्ति अपने अहंकार को ही भर लेते हैं। और **अहंकार से बड़ी अपात्रता कुछ भी नहीं है।** अपने को पात्र समझने वाले सभी लोग अहंकार से भर जाते हैं। सिर्फ अपने को अपात्र समझने वाले

लोग ही निरहंकार की यात्रा पर निकल पाते हैं। **इसलिए मैं उनसे उनकी पात्रता नहीं पूछ सकता हूं। फिर मैं उनका गुरू नहीं हूं जो मैं उनसे उनकी पात्रता पूछूं।** वे मेरे पास सिर्फ इसलिए आये हैं कि मैं उनका गवाह बन जाऊं। इस संबंध में दो तीन बातें और कहूंगा।

संन्यास मेरे लिए व्यक्ति और परमात्मा के बीच सीधे संबंध का नाम है। उसमें कोई बीच में नहीं हो सकता। संन्यास व्यक्ति का सीधा समर्पण है। उसमें बीच में किसी के मध्यस्थ होने की कोई जरूरत नहीं है और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। और एक आदमी 'उसके' लिए समर्पित होना चाहे तो समर्पित हो सकता है। **और फिर अपात्र समर्पण से पात्र बनना शुरू हो जाता है।** और फिर अपात्र संकल्प, समर्पण, प्रार्थना से पात्र बनना शुरू हो जाता है।

संन्यासी सिद्ध नहीं है, संन्यासी तो सिर्फ संकल्प का नाम है कि **वह सिद्ध होने की यात्रा पर निकला है।** संन्यासी तो सिर्फ यात्रा का प्रारंभ बिन्दु है, अन्त नहीं। वह तो सिर्फ शुभारंभ है, वह मील का पहला पत्थर है, मंजिल नहीं है। लेकिन मील के पहले पत्थर पर खड़े आदमी से जिसने अभी पहला कदम भी नहीं उठाया है उससे कहें कि मंजिल पर पहुंच गये हो तो ही चल सकते हो तो **जो मंजिल पर पहुंच गया है वह चलेगा क्यों?** और जो नहीं पहुंचा है वह कैसे दिखायेगा कि मैं मंजिल पर पहुंच गया हूं?

पहला कदम तो अपात्रता में ही उठेगा, लेकिन पहला कदम भी कोई उठाता है, यह भी बड़ी पात्रता है। और पहले कदम की ही कोई हिम्मत जुटाता है तो यह भी बड़ा संकल्प है।

संन्यास मेरी दृष्टि में बहुत और तरह की बात है। संन्यास मेरी दृष्टि में सिर्फ इस बात का स्मरण है कि मैं अब **स्वयं को परमात्मा के लिए समर्पित करता हूं। अब मैं स्वयं को सत्य की खोज के लिए समर्पित** करता हूं। अब मैं साहस करता हूं कि धार्मिक चित्त की तरह जीने की चेष्टा करूंगा।

ये संन्यासी गैरिक वस्त्रों में आपको दिखाई पड़ रहे हैं। वह उनके स्मरण के लिए है, 'रिमेम्बरिंग' के लिए है कि उनको स्मरण बना रहे कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे। दूसरे भी उन्हें स्मरण दिलाते रहें कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे। **वस्त्रों की बदलाहट से कोई संन्यासी नहीं होता लेकिन संन्यासी अपने वस्त्र बदल सकता है।**

गले में माला डाल लेने से कोई संन्यासी नहीं होता लेकिन संन्यासी गले में माला डाल सकता है और माला का उपयोग कर सकता है। **गले में डली माला उसके जीवन में आये रूपांतरण की सूचना है।** आप बाजार जाते

हैं कोई चीज लानी होती है तो कपड़े में गांठ बांध लेते हैं। जब भी गांठ याद पड़ती है, ख्याल आ जाता है कि कोई चीज लाने को आया था। गांठ चीज नहीं है और जिसने गांठ बांध ली वह चीज ले ही आयेगा यह भी पक्का नहीं है। क्योंकि जो चीज भूल सकता है वह गांठ भी भूल सकता है। लेकिन फिर भी जो चीज भूल सकता है वह गांठ बांध लेता है और सौ में ९० मौकों पर गांठ की वजह से चीज ले आता है।

यह कपड़ा, माला—यह सारा बाहरी परिवर्तन संन्यास नहीं है। यह सिर्फ गांठ बांधना है कि मैं संन्यास की यात्रा पर निकला हूं। उसका स्मरण, उसका सतत् स्मरण मेरी चेतना में बना रहे। वह स्मरण सहयोगी है।

●

जीवन एक यात्रा

"जीवन एक यात्रा है। हम किसी बिन्दु से चल रहे हैं और हमें किसी बिन्दु तक पहुंचना है। हमारा होना एक विकास है। हम पूर्ण नहीं है, किन्तु हमें पूर्ण होना है। पूर्णता के लिए न कोई विकास है, न कोई यात्रा है। सब विकास और यात्रा अपूर्णता में है। हम यात्रा में है। इस बोध का अर्थ है कि हम अपूर्ण हैं। अपनी अपूर्णता को ध्यान में रखो। अपनी सीमाओं पर मनन् करने से अपूर्णता का दर्शन होता है। और अपूर्णता का बोध पूर्णता की अभीप्सा को जन्म देता है। जिसे दीखेगा कि वह अपूर्ण है, वह पूर्ण के लिए आकांक्षा से भर ही जावेगा। जो अनुभव करता है कि वह अस्वस्थ है, वह सहज ही स्वास्थ्य के लिए कामना करने लगता है। अंधकार का अनुभव होने लगे तो प्रकाश की प्यास पैदा हो ही जाती है।"

—आचार्य श्री रजनीश

'जीवन ही है प्रभु'

जूनागढ़ साधना शिविर में भगवान श्री द्वारा दिया गया तृतीय प्रवचन

संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

'जीवन ही है प्रभु', इस सम्बन्ध में एक मित्र ने पूछा है कि कैसे दिखाई पड़े हमें कि जीवन ही प्रभु है ? क्योंकि, हमें तो चारों ओर दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। सबमें दोष दिखाई पड़ते हैं। क्यों दिखाई पड़ते हैं सबमें दोष ? इस सम्बन्ध में उन्होंने पूछा है।

प्रभु की खोज में एक सूत्र यह भी है। इसलिए इसे समझ लेना जरूरी है। निश्चित ही दोष दिखाई पड़ते हैं दूसरे में। कारण क्या है ? कारण सिर्फ एक है, **अपने अहंकार की तृप्ति**। दूसरे में दोष दिखाई पड़ता है, दूसरे में दोष की खोज चलती है, उसका राज छोटा सा है। शायद यह घटना सुनी होगी कि अकबर ने एक दिन अपने दरबार में एक लकीर खींची और अपने दरबारियों से कहा— "इसे बिना छुए, बिना मिटाये छोटी कर दो।" बहुत लोग हार गये— परेशान हो गये, बीरबल उठा, उसने एक बड़ी लकीर खींच दी। उसी छोटी लकीर के पास एक बड़ी लकीर खींच दी। वो लकीर उतनी ही रही, न मिटायी, न छोटी की, लेकिन छोटी हो गयी। जब हम दूसरे में दोष की तलाश में निकल जाते हैं, तब हम दूसरे की लकीर छोटी कर रहे हैं, ताकि हमें अपनी लकीर बड़ी मालूम पड़ने लगे। अपने को बड़ा देखने का सरलतम रास्ता यही है कि हम दूसरे को छोटा करके देखना शुरू कर दें। दूसरा रास्ता अपने को बड़ा करने का बहुत कठिन है कि हम सच में अपने को बड़ा करें। उसमें अपने को छूना पड़ेगा, बदलना पड़ेगा, मिटाना पड़ेगा, नया करना पड़ेगा। सरल रास्ता यही है कि अपने को छूना ही न पड़े। अपने में कुछ फर्क ही न करना पड़े। हम जैसे हैं, वैसे ही रहें और बड़े हो जायं तो सरल रास्ता यह है कि हमारे पास जो भी आते हों, उनको हम छोटा करके देख लें।

अगर जिंदगी में बड़ी यात्रा करनी हो और जीवन को महान रास्तों पर ले जाना हो कि जीवन में महानता का सूर्य निकले, तब तो फिर बहुत कुछ करना पड़ेगा। खुद को मिटाना पड़ेगा, नया करना पड़ेगा। खुद को बदलना पड़ेगा, मेहनत की बात होगी, श्रम लगेगा, साधना लगेगी। इतनी मेहनत में जाने को कोई आतुर नहीं है, उत्सुक नहीं है। तो सरल तरकीब, 'शॉर्टकट', निकटतम का रास्ता—जिसमें बिना कुछ किये, मुफ्त में हम बड़े हो जाते हैं—वह एक ही है कि जो भी हमारे निकट आता हो, उसे हम छोटा करके देख लें। और जब हम यही तय करलें, किसी को छोटा करके देखने का, तो दुनिया की कोई ताकत हमें रोक नहीं सकती, क्योंकि हमारी मरजी की बात है, हम छोटा करके देख ही सकते हैं। यूं हम किसी को भी छोटा करके देख सकते हैं; लेकिन इस भांति, जो हमारे भीतर बड़ा हो जाता है, **वह हमारी आत्मा नहीं है।** इस भांति, जो हमारे भीतर बड़ा हो जाता है, **उसी का नाम अहंकार है।** अगर हम अपने को बदलेंगे तो आत्मा बड़ी हो जायगी। इतनी बड़ी हो सकती है कि पूरे परमात्मा के साथ एक हो जाय। **अपने को बदलेंगे तो आत्मा बड़ी होगी और अपने को बिना बदले अगर बड़ा करना है, तो अहंकार बड़ा होगा।** मैं बड़ा हो जाऊंगा, आत्मा तो और छोटी हो जायगी। और यह भी ध्यान रहे, **अहंकार जितना बड़ा होगा, आत्मा उतनी छोटी हो जायगी और अहंकार जितना छोटा होगा, आत्मा उतनी बड़ी हो जाती है।**

तो, जो व्यक्ति अपने अहंकार को बड़ा करने में लगा है, वह जाने-अनजाने बहुत गहरे अर्थों में नुकसान उठा रहा है। हां, ऊपर से फायदे दिखाई पड़ेंगे। अहंकार को बड़ा करके देखेगा, दूसरे छोटे दिखाई पड़ेंगे, खुद बड़ा दिखाई पड़ेगा, लेकिन **जितना बड़ा अहंकार होगा, उतनी भीतर आत्मा छोटी होती चली जायगी : और जितना बड़ा अहंकार होगा, परमात्मा के मिलन का रास्ता उतना ही मुश्किल होता चला जाता है।** क्योंकि, मेरे 'मैं' के अतिरिक्त मुझे और कोई भी रोके हुए नहीं होता है और जब तक मैंने जिद की है कि मैं, **'मैं रहूंगा'** तब तक मैं विराट से मिल नहीं सकता हूं। वही तो बाधा है। इसलिए हम दूसरे में दोष देखने के लिए आतुर होते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों में दोष हैं ही नहीं। दूसरों में दोष हों या न हों, यह सवाल गौण है। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि, क्या हम दूसरे में दोष देखकर अपने को बड़ा करने की चेष्टा में संलग्न हैं, अगर इस चेष्टा में हम संलग्न हैं, तो हम बहुत आत्मघाती हैं। हम अपने हाथ से अपने को नुकसान पहुंचा रहे हैं—किसी और को नहीं। जिसके हम दोष देख रहे हैं, उसे तो फायदा भी हो सकता है, हमारे दोष देखने से वह दोष को बदलने में लग जाय। वह अपनी

कमियों को बदलने में लग जाय—हमारे दोष देखने से, लेकिन अगर हमारा अहंकार तृप्त होता हो तो हम बहुत खतरनाक रास्ते पर हैं—अपने ही हाथ पैर काटने में लगे हैं। हमारा कोई हित न होगा, लेकिन इससे एक उल्टी भ्रांति भी चलती है। एक भ्रांति तो यह है कि हम सब में दोष ही देखेंगे। इससे एक उल्टी भ्रांति भी है कि अगर दोष होंगे भी तो हम आंख बन्द कर लेंगे—हम दोष न देखेंगे। वह उल्टी भ्रांति भी खतरनाक हो सकती है और वह भी अहंकार को बढ़ाने वाली हो सकती है। अगर मैंने यह तय कर लिया कि मैं किसी के दोष देखूंगा ही नहीं, तो मेरे भीतर एक नये तरह का अहंकार बढ़ना शुरू होगा कि मैं ऐसा आदमी हूं, जो किसी के दोष कभी नहीं देखता। चोर चोरी करेगा, तो मैं आंख बन्द रखूंगा और चार गुंडे स्त्री पर हमला करेंगे, तो मैं पीठ फेरकर अपने रास्ते पर चला जाऊंगा। मैं किसी के दोष नहीं देखता हूं और चूंकि मैं दोष नहीं देखता हूं इसलिए मैं एक बहुत महान आदमी हूं। **पहली भूल में अहंकार तृप्त होता है, दूसरी भूल में भी तृप्त हो सकता है।** इसलिए असली सवाल दोष देखना और न देखने का नहीं है—सवाल है, देखने से—न देखने से हम अपने को अहंकार से तो नहीं भर रहे हैं ? लेकिन, जो आदमी अहंकार नहीं भर रहा है, वह सिर्फ देखता है। उसे दोष दिखाई पड़ सकते हैं, निर्दोषता भी दिखाई पड़ सकती है। वो वही देखता है, 'जो है'। उस 'जो है' के देखने से अपने अहंकार को न भरता है, न छोटा करता है, न बड़ा करता है।

एक बात चलती है कि साधु को किसी के दोष नहीं दिखाई पड़ते, गलत है वह बात—एकदम व्यर्थ है वह बात। असाधुओं को सबमें दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं, यह भी झूठ है और साधु को बिलकुल दोष न दिखाई पड़ें, यह भी उतना ही झूठ है—दोष है। और एक ही आदमी में दोनों बातें हो सकती हैं। एक आदमी पापी भी हो सकता है और साथ ही बड़ा पुण्यात्मा भी हो सकता है। इन दोनों में कुछ विरोध नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी पुण्यात्मा ही होता है और ऐसा भी नहीं है कि एक आदमी पापी ही होता है। जिंदगी बहुत जटिल है—यहाँ एक ही आदमी में काले और सफेद रंग के सब रूप दिखाई पड़ सकते हैं; यहाँ एक ही आदमी घड़ी भर पहले इतनी महानता प्रगट कर सकता है और घड़ी भर बाद एकदम क्षुद्र हो जाता है; यहां एक आदमी प्रेम कर सकता है, घृणा कर सकता है—वही आदमी एकदम स्वार्थी हो सकता है और वही आदमी किसी क्षण में परार्थ में अपना जीवन भी लगा देता है।

जीवन बहुत जटिल है। **आदमी सरल सीधा नहीं है कि हम एक निर्णय करलें कि यह आदमी कांटा ही कांटा है और वह आदमी फूल ही फूल है। नहीं, यहां एक ही गुलाब पर फूल भी लगते हैं और कांटे भी।** यहां जिंदगी बहुत जटिल है। यहां कांटे और फूल एक ही पौधे में भी लग जाते हैं। असाधु की एक भूल है कि वह कहता है, हमें दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। साधु की उल्टी भूल है और असल में साधु, जिसे हम कहते हैं, वह असाधु का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। असाधु जैसा खड़ा है, साधु उससे उल्टा शीर्षासन करके खड़ा हो जाता है और साधु हो जाता है। जो-जो असाधु करता है, वह वो नहीं करता, उससे उल्टा करता है। असाधु को दोष दिखाई पड़ते हैं, तो साधु को दोष दिखाई ही नहीं पड़ते। लेकिन, **जो आदमी शांत, मौन, सिर्फ देखने में साक्षी भाव रखेगा, उसे दोष भी दिखाई पड़ेंगे और निर्दोषता भी दिखाई पड़ेगी।** उसे जो बुरा है, वह बुरा भी दिखाई पड़ेगा और जो भला है, वह भला भी दिखाई पड़ेगा। फर्क इतना ही पड़ेगा कि वह दूसरे का भला-बुरा देखने के लिए आतुर नहीं है। वह तो 'जो है' सत्य को ही देखने को आतुर है। अपनी तरफ से कुछ भी थोपने को आतुर नहीं है। असाधु कहता है—हम सब पर दोष थोपकर रहेंगे। साधु कहता है—हम सबको निर्दोष करके रहेंगे। वह दोनों अपनी इच्छायें दूसरों पर थोपते हैं, लेकिन उन दोनों से भिन्न जिसको हम ठीक-ठीक दृष्टा कहें, वह वही देखता है, 'जो है'। वह उस 'जो है' में जरा भी फर्क नहीं करता है।

जो जैसा है, वैसा ही देखता है। और जब कोई दूसरे को वैसा ही देखता है, 'जैसा है' तभी वह समर्थ हो पाता है—अपने को भी वैसा ही देखने में, जैसा वह है। जो दूसरे में दोष देखेगा, वह सदा अपने को निर्दोष देखेगा। जो दूसरे को निर्दोष देखेगा, वह सदा अपने को दोषी देखेगा। मैंने कहा कि एक दूसरे के उल्टे हैं। अगर एक आदमी तय करले कि मैं सबमें बुरा देखूंगा, उसे सबमें बुराई दिखाई पड़ेगी—सिर्फ अपने को छोड़कर; क्योंकि, नहीं तो फिर मजा ही नहीं रह जायगा दूसरे में बुराई देखने का। अपने को भला बनाता जायगा, दूसरे को बुरा बनाता जायगा। इससे उल्टा आदमी भी कहता है, हम किसी में दोष नहीं देखेंगे। वह सबको निर्दोष देखेगा, तो अपने में दोष देखना शुरू कर देगा। यहां तक भी कर सकता है साधु कि भूल आप करें, दंड वह अपने को दे। चोरी आप करें, उपवास वह करे। यह भी कर सकता है, लेकिन यह उल्टी स्थिति हो गयी, यह सम्यक् दर्शन न हुआ, 'राइट विजन' न हुआ, यह ठीक-ठीक दर्शन न हुआ। ठीक दर्शन का मतलब है— सोने को सोना देखेंगे, मिट्टी को मिट्टी देखेंगे। वह भी आदमी पागल है जो मिट्टी को

सोना देखता है और वह आदमी भी पागल है जो सोने को मिट्टी देखता है— मिट्टी को जो मिट्टी नहीं देखता, सोने को जो सोना नहीं देखता है।

तो मैं आपसे नहीं कहता कि किसी में दोष मत देखें। मैं आपसे कहता हूं— किसी में दोष इसलिए मत देखें कि अपने को निर्दोष सिद्ध करना है, सब गलत बात है। और मैं अब यही नहीं कहता कि सभी को निर्दोष देखें, क्योंकि सभी निर्दोष नहीं हैं। अगर सभी निर्दोष होते, तो दुनिया बहुत अच्छी हो गयी होती— जिंदगी बदल गयी होती। तो फिर साधु-संन्यासी की कोई जरूरत न होती। हम कहते तो हैं कि साधु किसी में दोष नहीं देखता तो फिर साधु समझाता क्या है ? बतलाता क्या है ? लोगों को सुधारने की कोशिश क्यों कर रहा है ? अगर सभी निर्दोष हैं, तो साधुओं को आत्म-हत्या कर लेनी चाहिए। क्योंकि, फिर बदलना किसको है ? अगर सभी परमात्मा हैं, तो उपदेश किसको दिया जा रहा ? समझाया किसको जा रहा है ? नहीं, कहीं कुछ भूल है, जिसको बदलना है। कहीं कुछ चूक है, नहीं तो जरूरत ही नहीं है कोई। ठीक दर्शन चाहिए, अपना भी—दूसरे का भी। स्वयं का भी, बाहर का भी। और ठीक दर्शन बहुत अद्भुत बातें दिखायेगा। उस ठीक दर्शन में यह भी दिखाई पड़ेगा कि जब मैं दूसरे में दोष देख रहा हूं, **तो मूल कारण दूसरे का दोष है या दूसरे में दोष देखने का मेरा आनन्द,** यह भी दिखाई पड़ेगा। तब मैं सोचूंगा, समझूंगा कि जब मैं किसी को चोर कहना चाहता हूं, तब सच में मैं उसी की चोरी के कारण कहना चाहता हूं या कि सिर्फ इसलिए चोर कहना चाहता हूं, ताकि मैं अपने भीतर समझ सकूं कि मैं चोर नहीं हूं।

बर्टेन्ड रॅसल ने कहीं कहा है कि अगर कहीं चोरी हो जाय, तो जो आदमी सबसे ज्यादा चिल्ला रहा हो कि चोरी हो गयी—पकड़ो, कोई चोर भाग गया—पहले उसको पकड़ लेना। क्योंकि बहुत संभावना यह है कि उसी ने चोरी की हो। क्योंकि चोरी से बचने की सबसे सरल तरकीब यह है कि आप इतने जोर से चोरी के खिलाफ चिल्लायें कि कोई यह सोच ही न सके कि इसने चोरी की होगी। कैसे आप सोचेंगे, जो आदमी खुद ही चिल्ला रहा है, उसको तो फिर कोई नहीं पकड़ेगा। जो नेता भ्रष्टाचार के खिलाफ बहुत ज्यादा शोर-गुल मचाता हो और कहता हो कि मिटा देंगे भ्रष्टाचार, एक साल में खतम कर देंगे, ऐसा कर देंगे, उसको तो फौरन पकड़ के सूली पर लटका देना चाहिए। (हास्य) यह आदमी खतरनाक है। यह आदमी शोर-गुल जो मचा रहा है, उसके पीछे कारण है। उसके पीछे कारण यह है कि

इतने शोर-गुल में एक बात तो पक्की हो जायगी कि यह आदमी भ्रष्टाचारी नहीं है। बाकी दुनिया होगी, होगी। कोई बदल नहीं पाता। दुनिया को अभी तक कोई बदल नहीं पाता कि एक साल में कोई बदल जाय। उन नेताओं का पता नहीं चलता, साल भर बाद वो नेता रहा कि नहीं, कहां है, क्या है, कुछ पता नहीं चलता। लेकिन, इतने जोर से जब कोई चिल्लाता है, तो उसका कारण है मनोवैज्ञानिक। सरलतम तरकीब यही है। इसलिए जब एक चोर पकड़ जाता है, तो बाकी चोर उसकी निन्दा में संलग्न हो जाते हैं फौरन। गांव में एक चोर पकड़ जायगा, तो पूरा गांव निंदा करेगा। पूरा गांव निंदा करेगा कि चोरी बहुत बुरी बात है। और हर आदमी बढ़-बढ़कर जोर से बात करेगा कि पड़ौसी ठीक से सुन ले कि मैं भी चोरी के खिलाफ हूं, ताकि पता चल जाय कि कम से कम मैं चोर नहीं हूं।

जो व्यक्ति ठीक-ठीक देखने की कोशिश करेगा, उसे यह भी दिखाई पड़ेगा कि जब मैं दूसरे में भला देख रहा हूं, तो मैं थोप तो नहीं रहा हूं। है भी भला वहां ? या मैं थोप रहा हूं; क्योंकि कुछ लोग जिद किये हुए हैं कि भलाई देखेंगे। वे लोग भी खतरनाक हैं। इस देश में ऐसा ही हो गया। इस देश में पांच हजार साल से ऐसे लोग हुए, उन्होंने कहा— हम सबमें भलाई देखेंगे, इसलिए आज पृथ्वी पर इस देश से बुरा देश खोजना मुश्किल है,क्योंकि बुराई देखी नहीं, तो बुराई को बदलने का उपाय न रहा। जब किसी देश के सब समझदार आदमी यह तय कर लें कि हम भलाई ही देखेंगे तो फिर उस देश में बुराई इकट्ठी होती चली जायगी—उसको बदलेगा कौन ? जब दिखाई ही न पड़ेगी तो बदलेगा कौन ? तो हिन्दुस्तान ने अपने साधुओं को अलग खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा—हम तो सब में भला देखते हैं, हम तो बुरा देखते ही नहीं। तो फिर बुराई को बदला कैसे जाय ? समझ लें कि सब डॉक्टर तय कर लें कि हम तो बीमारी देखते ही नहीं, सभी में स्वास्थ्य देखते हैं, तो फिर वह देश बीमार हो जायगा। फिर उस देश में बीमारी जब कोई देखेगा ही नहीं, तो बीमारी न देखने से समाप्त थोड़ी हो जायगी ? न देखने से और बढ़ेगी; क्योंकि देखने से पकड़ी जा सकती थी—तोड़ी जा सकती थी—मिटायी जा सकती थी। लेकिन डॉक्टर सब भले आदमी हो जायं और वो कहें कि हम बीमारी देखेंगे ही नहीं, हम तो स्वास्थ्य देखते हैं—हम तो मरे आदमी में भी परम जीवन देखते हैं। हम कहते हैं कि यह तो बिलकुल स्वस्थ है। कोई केन्सर से लड़ रहा है, हम देखते हैं कि कितना स्वास्थ्य का आनंद ले रहा है। हम तो बुराई देखते नहीं; हम तो साधु हैं। तो फिर कठिनाई हो जायगी।

मेरी थोड़ी कठिनाई है, क्योंकि मैं जिंदगी को ठीक-ठीक देखने का आग्रह करना चाहता हूं। न तो मैं यह कहता हूं कि आप किसी पर बुराई थोपें, उससे भी अहंकार बढ़ेगा। न मैं यह कहता हूं—आप किसी पर जबरदस्ती भलाई थोपें, उससे भी अहंकार बढ़ेगा। मैं तो यह कहता हूं—जिंदगी जैसी है, उसको वैसी ही देखने की कोशिश करें। लकीरें मत खींचें। जितनी लकीरें हैं, उनको वैसा ही देख लें कि वह कितनी हैं। दूसरी लकीर खींचने की कोई जरूरत नहीं है। और देखने का यह दूसरा सूत्र भी समझ लें कि जो दूसरे में देखें वह अपने में भी देखें। जिंदगी अलग-अलग नियम नहीं मानती, जिंदगी का नियम एक है। अगर हम जिस भांति दूसरे में देखते हैं और जो नियम दूसरे के लिए बनाते हैं, वही नियम अपने लिये भी बना सकें तो जिंदगी बहुत ऊपर उठती है। लेकिन, हम सब दोहरे 'स्टेन्डर्ड' में जीते हैं—दोहरा मापदंड होता है, दूसरों के लिए दूसरा मापदंड होता है, अपने लिए दूसरा मापदंड होता है। अगर मैं क्रोध करता हूं तो मैं कहता हूं कि वह परिस्थिति की वजह से भूल हो गयी; अगर दूसरा क्रोध करता है तो वह पापी है—उसको नर्क जाना पड़ेगा; अगर मैं चोरी करता हूं तो मैं कहता हूं, मजबूरी थी, घर में खाना न था, पत्नी बीमार पड़ी थी, बच्चे रो रहे थे, मुझे चोरी करनी पड़ी; और अगर दूसरा चोरी करता है तो वह पापी है। दूसरे को और तराजू पर तौलते हैं; अपने को और तराजू पर तौलते हैं। दो तरह के बही-खाते ही नहीं हैं— दो तरह के एकाउन्ट्स नहीं हैं दुकानों में—आदमी के दिमाग में भी दोहरे नियम हैं।

दूसरे के लिये और है, अपने लिये और। यह बेइमानी की हद है; यह अनैतिकता की हद है। मैं इसको बड़ी से बड़ी अनैतिकता—'इम्मारालिटी' कहता हूं, जब हम दोहरे मापदंड का उपयोग करते हैं। इकहरा मापदंड चाहिए। ठीक से जीवन को देखने वाला आदमी इकहरा मापदंड बनाता है। जिस तराजू पर अपने को तौलता है, उसी पर दूसरे को तौलता है। और ध्यान रहे, जब भी कोई आदमी एक तराजू बनायेगा तो बहुत करुणावान हो जायगा —कठोर कभी भी नहीं रह सकता। दो तराजू बनायेगा तो कठोर हो जायगा, क्योंकि दूसरे को वह बिलकुल पाप के तराजू पर तौल लेगा कि यह आदमी पापी है, नर्क में डालो, अदालत में घसीटो, सजायें दो, फांसी लगाओ। लेकिन जब वह एक ही तराजू रखेगा, तो वह समझेगा कि जब किसी को फांसी लग रही है तो वह सिर्फ इसलिये लग रही है कि वह फंस गया है और मैं फंसा नहीं। इससे ज्यादा फर्क नहीं है। और वह जब देखेगा कि किसी और ने पाप किया है तो यह समझेगा कि उसका कुल कारण इतना है कि

उसका पाप पकड़ गया है और मेरा पाप पकड़ नहीं पाया है। अगर एक तराजू होगा, तो हम जानेंगे कि हर अपराधी के साथ हम अपराधी हैं—और हर पापी के साथ हम पापी हैं—और हर बुरे आदमी के साथ हमारी बुराई का भी हिस्सा जुड़ा है—हम भी साथ में खड़े हुए हैं। तब हम इस भांति 'कन्डेम्नेशन', इस तरह की निंदा में न लगेंगे कि भगा दो, गोली मार दो, आग लगाओ, नर्क में डालो; तब हम यह कहेंगे कि—जो यह आदमी कर रहा है, जो उस आदमी से हो रहा है—वह हमसे भी हो रहा हैं; और तब हम सोचना शुरू करेंगे कि क्या उपाय बने, कैसे उपाय बने कि आदमी का समाज बदले, जिसमें मैं भी बदलूँ और वह दूसरा भी बदले।

पुराने इतिहास का लंबा काल दोहरे मापदंड का काल है, इसलिये मनुष्य नैतिक नहीं हो पाया, क्योंकि नैतिकता का मूल बिन्दु करुणा ही, 'कम्पेशन' ही, आदमी में पैदा नहीं हो सका—आदमी कठोर हो गया। और यह बड़े मजे की बात है, जिसको हम नैतिक कहते हैं, वह बहुत कठोर होता है। नैतिक आदमी हद दरजे की दुष्टता कर सकता है, लेकिन वह आदमी दुष्टता को भी नैतिकता का जामा पहना देता है। और चूंकि वह खुद भी अपने प्रति कठोर होता है, इसलिए दूसरे के प्रति कठोर होने का लाइसेन्स उसे मिल जाता है। अगर किसी को सताना हो तो सबसे सरल तरकीब यह है कि पहले अपने को सताना शुरू करो। अगर दूसरों से उपवास करवाना हो— भूखे मरवाना हो तो पहले उपवास खुद शुरू करो। अगर खुद उपवास करने की हिम्मत जुटाली तो फिर आप किसी से भी उपवास करवाने की हिम्मत जुटा सकते हैं; और जो न करें वह पापी हो जायेंगे—वह निंदित हो जायेंगे। अगर दूसरों को भी सिर के बल खड़ा करवाने की तकलीफ देनी है, तो पहले खुद अभ्यास करके सिर के बल खड़े हो जाओ; फिर कोई आदमी यह न कह सकेगा कि यह आदमी कठोर है, बल्कि कोई भी आदमी यही कहेगा कि मैं बड़ा पापी हूं इसलिए शीर्षासन नहीं कर पा रहा हूं। आप बड़े पूज्यात्मा हैं, आप कर रहे हैं।

नैतिकता जिसे हम कहते रहे हैं अब तक--वह भी दूसरे को सताने की बड़ी गहरी व्यवस्था है, इसलिए घर में एक आदमी नैतिक हो जाय, तो सारा घर परेशान हो जाता है। एक आदमी को नैतिकता का भूत चढ़ जाय तो घर भर की गरदन दबा लेता है। ऐसे नैतिक आदमी बहुत गहरी हिंसा में उतर जाता है, लेकिन हिंसा दिखाई नहीं पड़ती—और उसका कारण इतना है कि वह सारी मनुष्यता की कमजोरी के साथ कभी अपने को एक साथ रखकर नहीं देख पाता, अपने को अलग रख लेता है। सारी मनुष्यता को अलग तराजू

पर तौल देता है। जो व्यक्ति जीवन के सत्य की खोज में निकला हो, उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम सब एक साथ एक ही तराजू पर तौले जायेंगे।

हमारा पूज्यात्मा और हमारा पापी सब एक साथ खड़े हुए हैं। और जो बहुत गहरा देखेगा, उसको यह भी पता चलेगा कि हमारा पूज्यात्मा और हमारे पापी भी अलग-अलग नहीं है—भीतर से जुड़े हुए हैं। बल्कि, उसे यह भी दिखाई पड़ेगा कि हमारा पूज्यात्मा भी इसलिए पूज्यात्मा मालूम पड़ता है कि कोई पापी होने के लिए तैयार हो गया है। इसलिए, मेरे देखे महात्मा और पापी भीतर से गहराई में जुड़े हुए हैं।

आप एक नाटक देखने जाते हैं तो आप देखते हैं कि नाटक में एक दुष्ट पात्र है। वह सता रहा है, सता रहा है, परेशान कर रहा है। वह चोरियाँ कर रहा है, वह स्त्रियों से बलात्कार कर रहा है, वह बच्चों की गरदनें दबा रहा है, वह बहुत दुष्ट है, वह सब तरह के उपद्रव कर रहा है। आपका मन उसके प्रति बड़े क्रोध से भर जाता है। फिर एक अच्छा पात्र है। एक साधु है, संत है, महात्मा है, वह उस बुरे आदमी से बचाने के लिये सेवा कर रहा है—आश्रम बना रहा है, वह सब उपाय कर रहा है। आपका मन उसके प्रति बड़े आदर से भर जाता है। और फिर नाटक समाप्त हो जाता है। वह जिसने पापी का काम किया और जिसने पूज्यात्मा का किया, वे दोनों गले में हाथ डालकर पर्दे के पीछे से बाहर आते हैं, तब आप ऐसा नहीं कहते उस बुरे आदमी से कि मारो उसको—तब आप इससे भी कहते हैं कि बहुत अच्छा अभिनय किया; और तब आप उससे यह भी कहते हैं कि अगर तुम न होते, तो महात्मा का पार्ट उभर न पाता—तुम थे तो उभरा।

असल में कहानी के लेखक ने उस पापी को गहरे से गहरे पापी बनाने की कोशिश की है, ताकि वह पूज्यात्मा उतने गहरे काले रंगों में सफेद और साफ और शुभ्र दिखाई पड़े, नहीं तो, वह पुण्यात्मा दिखाई नहीं पड़ सकेगा। लेकिन, नाटक के बाहर निकलकर हम—जिसने पापी का काम किया है—उसको सजा नहीं देते। लेकिन, जिन्दगी! जिन्दगी में हम बड़े कठोर हैं। लेकिन कौन कहता है कि जिन्दगी एक बड़ा नाटक नहीं है और कौन कहता है कि जिंदगी के पर्दे के बाहर अच्छे और बुरे गले में हाथ डालकर बैठकर चाय नहीं पी रहे हैं? लेकिन हम बहुत थोड़ी दूर तक देखते हैं। असल में जिंदगी को हम पूरा नहीं समझ पाते हैं क्योंकि जिंदगी को हम एक बड़े नाटक की तरह नहीं देख पाते।

मेरे पास बम्बई में एक फिल्म अभिनेता मिलने आये। उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे कुछ आप से अभिनय के बाबत पूछना है। और आपसे कैसे पूछूं?

क्योंकि किसी ने मुझे कहा है कि शायद आप कोई काम की बात कह सकें; मैं ठीक अभिनय कैसे करूं ? उसने कहा कि बड़ी अजीब सी बात आप से पूछ रहा हूं पता नहीं आप इसका उत्तर देंगे कि नहीं देंगे ! मैंने उनसे कहा कि ठीक ही तुम पूछते हो, पूछना ही चाहिये । तो मैंने एक सूत्र लिख कर उनको दे दिया कि जिन्हें ठीक से जीवन जीना हो, उन्हें जीवन इस भाँति जीना चाहिये कि जैसे वो अभिनय कर रहे हैं और जिन्हें ठीक से अभिनय करना हो, उन्हें अभिनय ऐसे करना चाहिए कि जैसे वो जीवन है । अगर कोई व्यक्ति अभिनय ऐसे कर सके जैसे कि वह जीवन है, तो वह कुशल अभिनेता हो जायगा । और अगर कोई व्यक्ति जीवन ऐसे जी सके कि वो अभिनय है, तो वह सत्य का ज्ञाता हो जायगा ।

'जीवन ही प्रभु है', यह हमें तभी पता चलेगा, जब हम जीवन को भी एक अभिनय की तरह देख सकें । तब बुरे में भी उसके दर्शन हो जायंगे, भले में भी उसके दर्शन हो जायेंगे । तब भले और बुरे से उसके दर्शन में बाधा नहीं पड़ेगी ।

मैंने एक बहुत अद्भुत कहानी सुनी है । मैंने सुना है—एक भिक्षु ने जाकर एक सम्राट से कहा कि सभी में ब्रह्म का आवास है । एक संन्यासी ने सम्राट को कहा—सभी में ब्रह्म है । पर सम्राट बहुत अद्भुत था, उसने कहा—बातचीत तो हम न करेंगे, लेकिन परीक्षा कर लेनी चाहिए । उस भिक्षु ने कहा कि बातचीत ही सब जगह होती है, ब्रह्म की तो चर्चा ही होती है । परीक्षा क्या होगी ब्रह्म की ? सबमें ब्रह्म है, यह मैं तर्क से सिद्ध कर सकता हूं । उस राजा ने कहा—तर्क की हम चिंता नहीं करते, हम तो जीवन में प्रयोग करके देख लेना चाहते हैं । उस भिक्षु ने कहा—प्रयोग करके देखें । राजा के पास पागल हाथी था । उसने पागल हाथी छुड़वा दिया उस भिक्षु पर । सारे राजधानी के लोग खड़े हो गये अपने-अपने महलों के ऊपर । बीच राज-पथ खाली हो गया । पागल हाथी छूटा । वह भिक्षु भागा; वह चिल्लाया; पहले बहुत डरा । लेकिन सम्राट ने उससे कहा—अरे भूल गये ! कहते थे, सभी में ब्रह्म है, तो पागल हाथी में ब्रह्म नहीं है ? तब तो वो बड़ी मुश्किल में पड़ गया । अपना ही तर्क कभी-कभी आदमी को बुरी तरह फंसा देता है । अब उसे बड़ी मुश्किल हुई । उसने कहा, अब क्या करें तो वह खड़ा हो गया आंख बन्द करके; हाथ-पैर कंपे जा रहे हैं, लेकिन वह खड़ा है । पागल हाथी ने आकर सूंढ़ में उसे पकड़ लिया है । महावत चिल्ला रहा है कि हट जा पागल ! छोड़ अपने ज्ञान को, कहां की बातों में पड़ा है ! क्यों अपनी जिंदगी गवांता है ? कह दे कि सब में ब्रह्म नहीं है; कम से कम पागल हाथी में, मैं नहीं मानता,

बाकी सब में होगा। (हास्य) एक क्षण तो उसने भागना चाहा, लेकिन राजा ने कहा—क्या भूल गया ? राजा ऊपर से चिल्ला रहा है कि भूल गया ! सारा गांव हंसेगा कि कहां गया ब्रह्मज्ञान ! तब वह फिर रुक गया। महावत ने बहुत कहा कि इन बातों में मत पड़, जान चली जायगी। महावत की सुनता था तो भागने की कोशिश भी करता था; राजा चिल्लाता तो फिर खड़ा हो जाता था। आखिर उस हाथी ने उसको पकड़ कर फेंक दिया तो वह दस-बीस फीट दूर जाके गिरा, हाथ पैर टूट गये। उठाके उसे ऊपर लाया गया। राजा उससे कहने लगा—क्या हुआ ? उसने कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया। जब आपकी बात सुनाई पड़ती थी तो खड़ा हो जाता था, क्योंकि अहंकार को चोट लगती थी कि अपनी बात गलत हुई जा रही है। महावत जब कहता था कि भाग जा, तब सोचता था कि जान क्यों गंवानी ? ज्ञान के पीछे जान थोड़ी गंवानी पड़ेगी। (हास्य) तो दोनों की दुविधा में पड़ गया था। राजा ने उससे कहा—लेकिन हाथी में तुझे ब्रह्म दिखाई पड़ा कि नहीं ? उसने कहा—बिलकुल नहीं। दिखाई तो नहीं पड़ा, लेकिन देखने की कोशिश पूरी की मैंने। क्योंकि अगर बिलकुल न दिखाई पड़ सके तब तो मैं भाग ही जाता, आंख बंद कर ली थी कि थोड़ी देर को भी किसी तरह ब्रह्म दिखाई पड़ जाय, फिर जो हो, हो। आंख बन्द कर ली थी इसलिए कि आंख खुलने में तो पागल हाथी दिखाई पड़ता था। महावत ने कहा— लेकिन तुझे मुझ में ब्रह्म दिखाई न पड़ा ? मैं जो चिल्ला रहा था कि हट जा। अगर पागल हाथी में ब्रह्म था, तो मुझ में न था ? और छोड़ मेरी बात, हाथी की भी छोड़, राजा की भी छोड़, तेरे भीतर भी तो ब्रह्म था, वह क्या कह रहा था ? कम से कम उसकी तो सुन लेनी थी। (हास्य) उस आदमी ने कहा—तब तो बड़ी भूल हो गयी। मेरा ब्रह्म तो पूरे वक्त कह रहा था कि भाग जा। (जोर से हास्य) पूरे समय कह रहा था कि भाग जा।

जिंदगी बहुत जटिल है। उस पागल हाथी में भी ब्रह्म है, लेकिन वह पागल ब्रह्म है, यह जानना। (हास्य) नहीं तो पागल ब्रह्म से बहुत मुसीबत हो जायगी। चोर में ब्रह्म है, लेकिन यह चोर ब्रह्म है यह समझना। और रावण में भी ब्रह्म है, लेकिन यह रावण का पार्ट अदा कर रहा है, यह भी जानना। **जीवन अगर एक अभिनय दिखाई पड़े तो हम बुरे में भी ब्रह्म देख पायेंगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम बुरे की पूजा करने लगें। इसका यह मतलब भी नहीं कि कोई हम रावण के भक्त हो जायंगे और रावण जैसा जीने लगेंगे।** इसका यह मतलब भी नहीं है कि हमारे लिये बुरे और भले में कोई भेद न रह जायगा। इसका केवल इतना मतलब है कि जिंदगी

तब हमें एक बोझ न मालूम पड़ेगी—एक गंभीरता न मालूम पड़ेगी; जिंदगी एक खेल और एक लीला हो जायगी। और जिसे जीवन में ही प्रभु को देखना हो, उसे जीवन को लीला बना लेना जरूरी है।

'सीरियस' और गंभीर लोग जीवन में परमात्मा को कभी नहीं देख सकते। लेकिन हमारा अनुभव उल्टा है। हम आम तौर से ऐसा ही समझते हैं कि जितनी गंभीर सूरतें हैं, वो सभी भगवान को उपलब्ध हो गयी हैं। हम यह तो सोच भी नहीं सकते कि संत भी हंस सकते हैं। असल में संत होने के लिए रोती हुई सूरत भी मिलना बहुत जरूरी चीज है। हम कल्पना ही नहीं कर सकते हैं। अगर महावीर कभी कहीं रास्ते पर खड़े हुए खिलखिलाते मिल जायं, तो महावीर के भक्त एकदम भाग जायेंगे वहां से कि यह गलत आदमी है। यह महावीर हो ही नहीं सकते। महावीर और खिलखिलाते हंसते हुए रास्ते पर! — असंभव। बुद्ध किसी होटल में मिल जायं, (**जोर से ठहाका**) हम कल्पना नहीं कर सकेंगे—हम विश्वास नहीं कर सकेंगे कि यह बुद्ध हो सकते हैं।

हम जिंदगी को ऐसी कठोरता से लिये हैं, जिंदगी का हलकापन 'वेटलेसनेस' नहीं; जिंदगी एक लीला, एक अभिनय नहीं, जिंदगी एक बड़ी गंभीरता की बात हो गयी। और गंभीरता एक रोग है। गंभीरता एक बीमारी है। धार्मिक आदमी गंभीर नहीं है। धार्मिक आदमी इतना हलका है, इतना प्रसन्न है, इतना प्रफुल्लित है कि जीवन के सब रूपों के साथ नाच सकता है, हंस सकता है, उठ सकता है, बैठ सकता है। लेकिन अब तक की धार्मिक परंपरा गंभीरता की परंपरा है। और इसलिये मैं कहता हूं, इस धार्मिक परंपरा की वजह से सिर्फ रोते हुए उदास लोग ही धार्मिक हो सके। हंसते हुए प्रसन्न लोगों को धार्मिक होने का मौका ही न रहा। वह तो निंदित हो गये, वह तो कभी धार्मिक हो ही नहीं सकते हैं। यही वजह है कि मरने के करीब पहुंचते-पहुंचते लोग मंदिरों में, मस्जिदों में जाना शुरू करते हैं। क्योंकि, तब तक हंसी-खुशी खो गई होती है, इसलिये मंदिरों और मस्जिदों में वृद्ध और वृद्धाओं के सिवाय कोई दिखाई नहीं पड़ता है। जवान वहां नहीं दिखाई पड़ते हैं बल्कि; बच्चों को भी अगर ले जाते हैं माँ-बाप, तो मंदिरों में गंभीर बना के बिठा देते हैं कि बिलकुल गंभीर बनकर बैठ जाओ, यह मंदिर है। तो बच्चों को भी बूढ़ा बनाके बिठाल सकें, तो ही मंदिरों में उनका प्रवेश है। मंदिर बड़े गंभीर हो गये हैं।

गंभीरता रोग है। प्रफुल्लता, जीवन में सहजता हो तो ही हम जीवन में परमात्मा को देख सकेंगे; गंभीर लोग न देख सकेंगे। गंभीर लोग इतने

हलके ही नहीं हैं कि उतनी बड़ी उड़ान भर सकें। पत्थर की तरह वजनी हो जाते हैं। तो मेरे देखे, फूल में गंभीरता नहीं है और न हवाओं में गंभीरता है और न वृक्षों में और न पक्षियों की आवाज़ों में और न आकाश के तारों में और न सूरज में। अगर हम सारे जगत में खोजने चले जायँ, तो सिर्फ आदमी में कुछ आदमी मिल जायेंगे, जो गंभीर और उदास और दुःखी हैं और भारी हैं। लेकिन जगत में और विश्व में कहीं भी भारीपन नहीं मिलेगा। सारा जगत एक नृत्य में डूबा हुआ है, एक प्रफुल्लता में डूबा है, एक रस में विभोर है। तो यह भी सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं कि रस में विभोर हो सकेंगे, हलके होकर, जीवन के सब रूपों में तो शायद प्रभु का दर्शन हो सके सब तरफ। क्योंकि प्रभु तो बहुत आनंद-रस में विभोर होके नाच रहा है और हमने तय कर लिया है कि सिर्फ गंभीर भगवान से मिलेंगे, और वह कहीं है नहीं। कहीं कोई गंभीर भगवान नहीं है; लेकिन हमने तय कर लिया है कि गंभीर भगवान की खोज करनी है। और शायद इसलिए हमने असली भगवान की फिक्र छोड़ दी। अब पत्थर की मूर्तियां मंदिरों में बनाकर रखली हैं; क्योंकि पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा गंभीर और वजनी क्या हो सकता है? मरा हुआ, पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा और क्या हो सकता है—'डेड'—जिसमें जीवन का कोई अंकुर नहीं निकलता, जिसमें कोई फूल नहीं खिलता, जिसमें कभी कोई हेर-फेर, बदल नहीं होती। बिलकुल मरा हुआ पत्थर पड़ा हुआ है। जिंदा पत्थर को भी पूजते तो भी ठीक था, उसमें भी कुछ भगवान हो सकता है। वो जिन्दा से भी काम नहीं चलता, पहले खीला-हथौड़ी लेकर उसको मारना पड़ता है पूरा—जब उसकी सब जिंदगी काट डालते हैं और अपने हिसाब से ढाल लेते हैं। वो भगवान तो शायद इसीलिये बचा फिरता है आदमी से; पर अगर मिल जाय तो पता नहीं हम छैनी-हथौड़ा लेकर उसे कितना काट-पीट करें और किस शकल में ढाल के उसको मंदिर में बिठायें; क्योंकि हम वैसा का वैसा कभी स्वीकार न करेंगे उसको। क्योंकि निश्चित वह हंसता होगा, अगर वह न हंसता होगा तो यह हंसी कहां से आती है इस जगत में? अगर वह नहीं गीत गाता है, तो गीत कहां से जन्मते हैं? अगर वो प्रेम नहीं करता है, तो प्रेम की इतनी बड़ी धारा, इतनी बड़ी गंगा कैसे बहती है? अगर फूलों में उसे कोई उत्सुकता नहीं, तो फूल खिलते क्यों हैं? वह तो बहुत आमोद में है। वह तो बहुत रस में निबद्ध मालूम होता है। उसकी तो घड़ी-घड़ी नृत्य और नाच में डूबी हुई मालूम पड़ती है। हमें अगर मिल जाय तो पहले तो हमें उसका नाच-छीनना पड़े, हाथ पैर-बांध देने पड़ें। लेकिन जिन्दा भगवान भरोसे का नहीं हो सकता। हम कहीं बिठाएं, वो कहीं चला जाय, तो हम

पत्थर के ही बना लेते हैं। वह बड़ा सुविधा पूर्ण है। जहां बिठा देते हैं, फिर वहीं बैठा रहता है, फिर कोई फर्क नहीं होता। रोज जाते हैं, वहीं मिल जाता है—जहां बिठाया है। कभी ऐसा नहीं होता कि यहां-वहां हो जाय। फिर कभी गड़बड़ भी नहीं करता है। हमने जैसा मान रखा है, वैसा ही रहता है-उससे अन्यथा कभी नहीं होता।

पत्थर के भगवान के प्रति हम 'प्रिडिक्ट' कर सकते हैं, हम घोषणा कर सकते हैं कि वैसे ही रहेगा। असली भगवान के साथ कुछ भरोसा नहीं कि हम उसे एक मंदिर में गंभीर खड़ा करके लौटें और सुबह जब जायें तो वह नाच रहा हो। 'अनप्रिडिक्टेबिल' होगा वह। असल में सभी जिन्दा चीजें 'अनप्रिडिक्टेबल' हैं, जिन्दा चीजों के बाबत घोषणा नहीं हो सकती है—भविष्यवाणी नहीं हो सकती है; इसलिये मुर्दों के सिवाय ज्योतिषी किसी के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बता सकता। जो बिलकुल मरे मराये लोग हैं, उन्हीं के सम्बन्ध में ज्योतिषी कुछ बता सकता है। जिन्दा आदमी के बाबत ज्योतिषी कुछ नहीं बता सकता। जिन्दा आदमी हाथ की सब रेखाएं गलत कर देता है।

मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव के पास से गुजरे थे एक नदी के किनारे। दोपहर थी भरी, धूप थी तेज, नदी की रेत पर उनके पैर के चिन्ह बन गये। पीछे काशी से बारह वर्ष ज्योतिष का अध्ययन करके एक पंडित लौटता था। बड़ी किताबें, ज्योतिष के ग्रंथ साथ में बांधे हुए थे। पंडितों के पास सिवाय ग्रंथों के और कुछ है भी नहीं, कभी भी नहीं था। पंडित बड़े दीन हैं। उनके पास कागज किताबों के सिवाय कुछ भी नहीं है। अपना बोझ लिये चला आता था। बारह साल मेहनत की थी ज्योतिष में। असल में लोग फिजूल की चीजों में इतनी मेहनत करते हैं कि अगर ठीक चीजों में उतनी मेहनत करें, तो कभी के परम को उपलब्ध हो जायं। लेकिन बारह साल ज्योतिष सीखने में गवांये और वह लौट रहा था। वहां देखे पैर के चिन्ह पड़े रेत पर, वह चौंक गया; क्योंकि पैरों में वो चिन्ह था, जिसको ज्योतिष के शास्त्र कहते हैं कि इस आदमी को चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए। अब भरी दोपहरी में, छोटे-से गांव में, साधारण-सी नदी की रेत पर, चक्रवर्ती राजा नंगे पैर चलेगा? उसने मन में कहा कि कुछ गड़बड़ हो गयी; चक्रवर्ती और इस साधारण से गांव में! और इस गंदी-सी नदी की रेत पर! और नंगे पैर! और भरी दोपहरी में चल रहा है! तो अगर चक्रवर्ती ऐसा घूम रहा हो तो इन किताबों को नदी में डुबाकर—बारह साल व्यर्थ गये सोचकर—घर लौट जाना चाहिए। पर उसने सोचा जरा खोज तो लें कि चक्रवर्ती आस ही पास न हों कहीं; क्योंकि पैर के निशान इतने ताजे हैं कि अभी-अभी यह गुजरा

होगा। तो वह पैरों के पीछे-पीछे चलकर गया। एक वृक्ष की छाया में बुद्ध विश्राम करते थे। आँख बंद थी, पैर थे टिके। तो उसने पैरों के पास जाकर देखा, यही आदमी है। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पास में भिक्षा का पात्र रखा है, चक्रवर्ती होने का सवाल नहीं। भिक्षु है, फटे कपड़े पहने हुए हैं। लेकिन, चेहरा तो चक्रवर्ती का ही मालूम पड़ता है। जगाया और कहा कि मुश्किल में डाल दिया है, बारह साल की मेहनत पानी हुई चली जा रही है। आप हैं कौन ? यहां क्या कर रहे हैं ? आपके पैर के चिन्ह तो कहते हैं, चक्रवर्ती सम्राट हैं ! तो इस भरी दोपहरी में, साधारण-से गरीब गांव की नदी की रेत पर ! यहां किसलिए आये हैं ? साथी कहाँ हैं ? संगी कहां हैं ? दरबारी कहां हैं ? अकेले वृक्ष के नीचे क्या कर रहे हैं ? फटे-पुराने कपडे क्यों पहने हैं ? यह क्या नाटक है ? यह भिक्षा का पात्र क्यों लिये हैं ? बुद्ध ने कहा : "मैं तो भिक्षु ही हूं।" उसने कहा : "फिर मेरी किताबों का क्या होगा ? नदी में फेंक दूं ? बारह साल की मेहनत बेकार गई !" बुद्ध ने कहा : "नहीं, किताबें काम पड़ेंगी, किताबें ले जाओ। बहुत मरे लोग हैं, जिनके चिन्ह मिलाओगे तो मिल जायेंगे।"

लेकिन जिन्दा आदमी पर रेखायें नहीं बनती। जिन्दगी पर कोई बंधन नहीं है, जिंदगी निर्बंध है। जिंदगी मुक्त है; इसलिए 'प्रिडिक्शन' नहीं हो पाता, भविष्यवाणी नहीं हो पाती। जितना जीवन्त व्यक्ति होगा, उसके कल के बाबत कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कल वो क्या कहेगा, क्या करेगा, कैसे उठेगा, कैसे जियेगा ! कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हां, जितना मरा हुआ आदमी है, कल के बाबत कहा जा सकता है कि कल भी सुबह उठके यह करेगा, यह बोलेगा, पत्नी से लड़ेगा, बाजार जायेगा, दुकान चलायेगा, सांझ को लौटेगा, बेटे को डांटेगा कि पढ़ाई नहीं की, परीक्षा ठीक से नहीं दी, रात झंझट और कुछ करेगा, रात सो जायगा, सुबह फिर उठेगा, सब बताया जा सकता है। इसलिये हमने पत्थर के परमात्मा बनाकर रखे हुए हैं, असली परमात्मा से बचने के लिए; क्योंकि असली परमात्मा के बाबत कुछ भी भरोसा, 'रिलायबिलिटी' नहीं है, असली परमात्मा भरोसे योग्य नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है, जब सभी में परमात्मा है तो फिर मंदिर की मूर्ति की पूजा करें तो आपको एतराज क्या है ?

मैंने कहा : सभी में परमात्मा है। उनको मंदिर की मूर्ति फौरन याद आ गई कि उसकी पूजा करें तो एतराज क्या है। अगर सभी में परमात्मा है, यह समझ में आ गया तो मंदिर की मूर्ति का सवाल ही नहीं रहता है। मंदिर

की मूर्ति का सवाल तभी तक है, जब तक सभी में परमात्मा नहीं—तब तक मंदिर की मूर्ति में परमात्मा देखने की चेष्टा चलती है। जिस दिन सभी में दिख गया तो फिर कौन है मंदिर की मूर्ति और कौन है मंदिर के बाहर ? कौन मंदिर की मूर्ति है और कौन मंदिर की मूर्ति नहीं है; फिर कैसे पता चलेगा ? फिर कैसे पक्का करोगे कि दरवाजे पर जो भिखारी बैठा है वह मंदिर की मूर्ति नहीं है; और मंदिर के भीतर जो पत्थर रखा है वह भगवान है। नहीं, फिर उपाय नहीं है। लेकिन मंदिर की मूर्ति 'सब्स्टीट्यूट' है, इसलिए खतरनाक है। मैं कहता हूं, मत करना मंदिर की मूर्ति की पूजा। इसलिए नहीं कि उसमें परमात्मा नहीं है, परमात्मा तो सब जगह है; लेकिन मंदिर की मूर्ति उन्होंने ईजाद की है, जो सब तरफ के परमात्मा से बचना चाहते हैं। उन्होंने इसको ईजाद किया है। अधार्मिक लोगों ने मंदिर की मूर्ति ईजाद की है। परमात्मा के शत्रुओं ने मंदिर की मूर्ति ईजाद की है, ताकि जीवन्त परमात्मा से बचा जा सके। और एक मरे हुए, ढांचे में ढले हुए, अपने ही हाथ से बनाये हुए भगवान के सामने हाथ जोड़के, घुटने टेकके बैठा जा सके। अगर दुनिया में कहीं पृथ्वी के बाहर और भी लोग हैं और हमें देखते होंगे, अपनी ही ढाली गयी, अपनी ही बनाई हुई मूर्तियों के सामने घुटने टेके हुए, तो बहुत हंसते होंगे कि पृथ्वी के आदमी पागल मालूम होते हैं।

तो मुझसे पूछा है मित्र ने कि जब सभी में भगवान है, तब तो फिर मूर्ति में भी भगवान हो गया। तो फिर हम मूर्ति की पूजा करें तो आपको एतराज क्या है ? बहुत एतराज है और एतराज यही है कि जब तक मूर्ति पकड़ी रहेगी, तब तक सब में दिखाई नहीं पड़ेगा। और एक दफे सबमें दिख जाते हैं, फिर मूर्ति में भी होगा। लेकिन पूजा की क्या जरूरत रह जायगी फिर ? कौन पूजेगा ? किसको पूजेगा ? जब सब में ही दिखाई पड़ जायगा। एकनाथ लौटते थे काशी से और सारे मित्र साथ थे। तो पानी लेकर जा रहे हैं रामेश्वरम् चढ़ाने को। और बीच में एक मरुस्थल में एक प्यासा गधा पड़ा है। अब गधे में; और भगवान हो सकते हैं ! कभी नहीं हो सकते हैं। गधे में कहीं भगवान हो सकता है ! एकनाथ की मंडली जा रही है। वह गधा प्यासा तड़प रहा है। रेगिस्तान है, पास पानी नहीं है; लेकिन वो भगवान के पुजारी काशी से पानी लेके रामेश्वरम् चले जा रहे हैं। बड़े भक्त हैं—पक्के भक्त मालूम होते हैं, इतनी लम्बी यात्रा कर रहे हैं। नासमझियों में कष्ट उठाने से कोई भक्त नहीं हो जाता, सिर्फ बुद्धिहीन सिद्ध होता है।

लेकिन बुद्धिहीनता धर्म के नाम से चल रही है। अब वो बड़ा कष्ट उठा रहे हैं; गाँव-गाँव में उनका स्वागत हो रहा है; क्योंकि उसी तरह के

बुद्धिहीन वहाँ भी इकट्ठे हैं। वो कह रहे हैं, बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं। ये तीर्थ-यात्रा से लौट रहे हैं, बड़ी तीर्थ-यात्रा पर जा रहे हैं। कौनसी तीर्थ-यात्रा हो गयी। वह पड़ा है गधा, वो प्यास से चिल्ला रहा है। एकनाथ भी उस मंडली में हैं। उन्होंने अपना वह जो कमंडल भर के लाये थे, उस गधे को पिला दिया। सारी मंडली टूट पड़ी कि तुम बड़े अधार्मिक हो। पागल हो गये हो? यह तो रामेश्वरम् के भगवान के लिए लाये हैं। एकनाथ ने कहा, रामेश्वरम् के भगवान पता नहीं प्यासे हैं या नहीं और होंगे तो वहाँ हम और पानी भर लेंगे; लेकिन यह भगवान बहुत प्यासे हैं। एकनाथ को मंडली से अलग कर दिया गया। हटो तुम अलग, नास्तिक मालूम होते हो—धार्मिक नहीं मालूम होते। गधे को पानी पिलाते हो और गधे में भगवान!

वह जो जीवंत हमारे चारों तरफ फैला है, उसमें हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं। और एक पत्थर की मूर्ति में, जो हम बाज़ार से खरीदकर लाते हैं, उसमें हमें दिखाई पड़ जाते हैं। संभव नहीं दिखता—गणित उल्टा मालूम होता है। हाँ, जिस दिन सबमें दिख जायेंगे, उस दिन उस पत्थर में भी दिख जायेंगे; लेकिन सबमें तो नहीं दिखाई पड़ रहे हैं।

वो मेरे मित्र पूछते हैं कि सबमें आप मानते हैं? मैं मानता नहीं हूं, मानने की जरूरत ही नहीं है। सबमें है। इसकी देखने की जरूरत है। मानने की कोई जरूरत नहीं। यह अंतिम बात और एक सूत्र आपसे कहूं कि जो मान लेगा कि सबमें है, वह कभी न जान पायेगा। मान लेना बाधा बनेगी। मान लेने का कोई मतलब नहीं है। मान लेने की जरूरत क्या है? अगर दिखते हों तो ठीक, कम से कम सच्चाई की घोषणा तो करनी चाहिये कि मुझे नहीं दिखते।

एक फकीर हुआ···शर्मद। तो इस्लाम में पवित्र मंत्र की तरह यह बात कही जाती है, "एक ही अल्लाह है और कोई अल्लाह नहीं" एक ही ईश्वर है और कोई ईश्वर नहीं; लेकिन यह जो शर्मद था, वह आधा हिस्सा कहता था—वह पूरा नहीं कहता था। वह कहता था, कोई ईश्वर नहीं। पहला हिस्सा है, एक ही ईश्वर है। वह शर्मद आखिरी का टुकड़ा ही कहता था। वह कहता था कोई ईश्वर नहीं। उसको औरंगजेब ने बुलवाया और उससे कहा कि हमने सुना है कि तुम बड़ी अधार्मिक बातें कहते हो। हमने सुना है, तुम कहते हो कोई ईश्वर नहीं। उसने कहा, "अभी हम इतना ही जान पाये हैं। हम जितना जान पायेंगे उतना ही कहेंगे; उससे ज्यादा हम कैसे कहें! हम कैसे कहें कि एक ही ईश्वर है। हमने देखा ही नहीं, हमने जाना ही नहीं? अभी तो हम इतना ही जान पाये हैं कि कोई ईश्वर नहीं। बहुत खोजा, कहीं ईश्वर नहीं दिखाई पड़ा। मौलावियों ने कहा कि यह नास्तिक

है, इसकी हत्या कर देनी चाहिए।" औरंगजेब ने कहा, इतना कहने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? उसने कहा, "बहुत बिगड़ता है; क्योंकि भगवान की खोज में निकले हैं हम और अगर झूठ से ही शुरूआत की तो सत्य तक कैसे पहुंचेंगे ? खोज में निकला हूं कि है कहीं ईश्वर। अभी इतना ही जान पाया कि कहीं नहीं है। जिस दिन जान लूंगा कि है, उस दिन कहूंगा उसके पहले नहीं कहूंगा।" आखिर बहुत समझाने बुझाने का कोई परिणाम न हुआ। वह राजी न हुआ यह बात कहने को। उसने कहा "झूठ मैं कैसे कहूं कि मुझे दिखता है। तुम्हें दिखता होगा, तुम कहते हो, मुझे नहीं दिखता।" आखिर उसकी गरदन काट डाली गयी।

बड़ी अद्‌भुत कहानी है, पता नहीं कैसे घटी ! गरदन उसकी काटी गयी। जैसे ही उसकी गरदन गिरी—कहते हैं कि कोई एक लाख आदमी इकट्ठे थे देखने को, आंखों के गवाह इतने मौजूद थे—जैसे ही उसकी गरदन कटी उसने कहा, "एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं।" तो लोगों ने कहा, पागल पहले क्यों नहीं कह दिया ?तो उसने कहा, तब तक नहीं दिखाई पड़ा था तो कैसे कहता ? अब दिखता है तो कहता हूं। कटी हुई गरदन ने पता नहीं कहा कि नहीं; लेकिन कटी हुई गरदन से यह आवाज—शर्मद ने कहा— अब दिख गया। उसकी गरदन लुढ़कती है मस्जिद पर जिस पर वह काटा गया है। सीढ़ियों पर लहू के निशान हैं और उसकी गरदन लुढ़कती आती है। वो भीड़ उससे पूछती है कि अब क्यों दिख गया ? उसने कहा, "तब तक शर्मद था इसलिए दिखाई नहीं पड़ा, अब शर्मद कट गया तो दिखाई पड़ गया। अब मैं कहता हूं—एक ही ईश्वर है और कोई ईश्वर नहीं है।"

यह मैं आपसे नहीं कहता कि आप मान लें कि ईश्वर सब में है। जीवन ईश्वर है, यह मैं नहीं कहता हूं कि आप मान लें। आप मान लेंगे तो झूठ में पड़ जायेंगे। ऐसे झूठ में कभी मत पड़ना, ऐसे तो झूठ में काफी पड़े हुए हैं। ईश्वर तक के सम्बन्ध में हमने झूठ ईजाद कर लिये हैं। जो मुझे पाता है, उससे ज्यादा कभी नहीं—उससे ज्यादा मानने की कोई जरूरत ही नहीं ? कौन कहता है कि उससे ज्यादा माने ? अभी इतना ही माने कि मुझे पता नहीं है। अच्छा है, इतनी सच्चाई काफी है। इतनी सच्चाई—यात्रा के लिये काफी है पाथेय। इसको लेकर यात्रा हो जायगी। इतना बहुत है, इतनी ईमानदारी काफी है कि मुझे पता नहीं। मुझे तो वृक्ष दिखाई पड़ता है, मुझे ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता। नहीं दिखाई पड़ता तो बहुत अच्छा है, वृक्ष भी क्या खराब है, वृक्ष भी बहुत अच्छा है। न दिखाई पड़े ईश्वर तो वृक्ष को ही देखें अभी कुछ दिन। जल्दी क्या है ? लेकिन मैं कहता हूं कि वृक्ष को गहरे

देखेंगे तो ईश्वर दिखाई पड़ जायगा। और गहरे, और गहरे, और गहरे; लेकिन सच्चाई गहरे ले जा सकती है। झूठ नहीं गहरे ले जा सकता। सब विश्वास झूठे हैं,—सब 'बिलीफ' झूठे हैं—सब मान्यतायें झूठी हैं, सब पकड़े हुए शास्त्र क्योंकि ये हमारे अनुभवों से नहीं आते हैं, यह हमारे लिये बिलकुल झूठे हैं। और उनको पकड़ कर हम बैठे हैं; इसलिये सत्य की कोई यात्रा नहीं हो पाती।

मैं तो कहता हूं कि जिसे आस्तिक होना हो उसे नास्तिक होना ही पड़ता है, जिसे 'हां' भरना हो, किसी दिन पूरे प्राणों से उसे पूरे प्राणों से एक दिन नहीं भी कहना पड़ती है। लेकिन हम 'हां' कहने में ऐसे लोलुप हैं कि नहीं कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते और 'हां' कह देते हैं। फिर हमारी 'हां' नपुंसक होती है। जो आदमी 'ना' नहीं कह सकता है, उसकी 'हां' का कोई मतलब नहीं है। जो आदमी 'हां' कहने की हिम्मत जुटाना चाहता हो, उसे 'ना' कहने की हिम्मत पहले जुटा लेनी चाहिये। लेकिन इतना पक्का है कि हमारी 'ना' से वह 'ना' नहीं हो जाता। वह है, तो हमारी 'ना' ही टूट जायगी और नहीं है तो ठीक है हमारी 'ना' ठीक रहेगी। इतना मैं कहता हूं कि 'ना' कहने वाला अगर हिम्मत से 'ना' कहे तो वह परमात्मा की आंखों में एक जगह बना लेता है। नास्तिक की एक जगह है, बड़े आस्तिक की कोई भी जगह नहीं है।

जो आदमी कहता है मुझे नहीं दिखाई पड़ता, वह भगवान भी सामने खड़ा हो जाय तो वह कहेगा अभी मुझे दिखाई नहीं पड़ता तो मैं कैसे 'हां' कह दूं ? और भगवान झूठ के लिए किसी को मजबूर कर सकता है ? नहीं नास्तिकों की उसके हृदय में एक जगह है; क्योंकि कम से कम वे सच्चे तो हैं। वे इतना तो कहते हैं कि हमें नहीं मालूम पड़ता; लेकिन जो कहता है, हमें मालूम नहीं पड़ता, वह खोज पर निकल जाता है; क्योंकि न मालूम पड़ने पर कोई भी कभी रुक नहीं सकता। 'ना' पर कभी कोई ठहर नहीं सकता 'ना' कभी मंजिल नहीं हो सकती। मंजिल तो 'हां' ही हो सकती है। 'ना' में तो पीड़ा बनी ही रहेगी कि और खोजो, पता नहीं और आगे हो, और आगे हो, और आगे हो, खोजते-खोजते 'ना' गिर जाती है और 'हां' आ जाता है। लेकिन यह मान्यता की बात नहीं है—जानने की जरूरत है। फिर जानने का ही उपाय है। जानने का मार्ग है, उसे मैं 'ध्यान' कहता हूं। कल सुबह हम उस मार्ग में फिर प्रवेश करें कि हम उसे कैसे जान सकते हैं।

तो सुबह साढ़े आठ बजे जो मित्र आते हैं आ जायं। आज रात की बात पूरी हुई।

और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

—०००—

साधक का पत्र भगवान श्री को

प्रभो,

गये मंगलवार की सुबह ६। बजे की घटना । बस यूं समझिये जिन्दगी की लकीर को दूसरा छोर प्राप्त होने को था कि पता नहीं लकीर टूटकर फिर कैसे जुड़ गयी ! लकीर का दूसरा छोर क्षितिज को जा मिला ।

Indocid capsule और Veganin tab. एक साथ भूखे पेट सुबह ८ बजे पानी के साथ ली, Joint pain और Headache रहने की वजह से । एक घंटा पश्चात उसका Reaction हो गया । मैं आंतरिक रूप से जागरूक था; पर शारीरिक रूप से unconscious, अचेतन—complete. डॉक्टर लोग हैरान । Pulse (नाड़ी) मंद-मंद होते-होते मस्तिष्क की ओर पैठ गयी । डॉक्टर घबरा गया । आंखें फाड़कर देखने की कोशिश करता रहा। आंखों की चंचलता, symbolic sequence बिल्कुल नहीं । दांत की कड़ियां पक्की जाम हो गयीं । जब डॉक्टर आंख की जांच कर रहा था उसी वक्त मैं आंख के द्वारा बाहर हो गया—आपका स्मरण लिये हुए।

पत्नी, बच्चे, भाई, बहन तथा पिताश्री के इहलोक के स्थापित सम्बन्ध को बिल्कुल नजर से सहजता को लिये हुऐ आपके ध्यान को मन में उतार कर इस शरीर से दूर, कहीं दूर—जहां से वापिस नहीं आया जाता, जाने को था । आपने मुझे धक्का देकर शरीर में फिर प्रवेश करने को मजबूर कर दिया । प्रवेश कर गया ।

करीब दो घंटे शरीर के बाहर रहकर फिर शरीर में हलचल-सी आयी । इहलोक के सम्बंधियों के चेहरों पर उदासी हटकर खुशी का साम्राज्य मैंने अनुभव किया; और होंठ व्यंगात्मक हंसी से फैल गये ।

जिंदगी के सत्यों को भुलाकर जो जीते हैं उन्हें मरते वक्त सत्य की परिभाषा झूठी लगने लगती है । जीवन असार मालूम पड़ता है ।

कितना गलत है यह !

—प्रेमकुमार गांधी

गाँधी स्टोर्स, चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)

(६-१०-७१)

भगवान श्री द्वारा प्रेमियों को लिखे गये पत्र

प्यारी रंजना,

प्रेम। स्वप्नों में मत खोना।

खोना तो प्रीतिकर लगता है, लेकिन फिर तब स्वप्न टूटते हैं—टूटते ही हैं; और बहुत तिक्त और कड़वा स्वाद प्राणों में छोड़ जाते हैं।

और ध्यान रखना कि कोई भी अपवाद (Exception) नहीं है।

यद्यपि प्रत्येक का मन स्वयं को और स्वयं के स्वप्नों को अपवाद मानने का होता है!

जीवन को बना प्रारंभ से ही सत्य पर—यथार्थ पर।

शायद, प्रारंभ स्वप्नों जैसा सुखद न भी लगे, लेकिन जैसे-जैसे सत्य में गहरे उतरना होता है, वैसे-वैसे ही रस के नये-नये झरने प्राप्त होते चलते हैं!

स्वप्नों के मार्ग से स्वर्ग तक कोई कभी नहीं पहुंचा है।

स्वर्ग के द्वार का नाम है : सत्य।

स्वप्न प्रलोभन स्वर्ग का देते हैं—लेकिन पहुंचा देते हैं सदा ही—अचूक-नर्क में!

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

०००

प्रिय योग माया,

प्रेम। स्वतन्त्रता से बहुमूल्य इस पृथ्वी पर और कुछ भी नहीं है।

उसकी गहराई में ही संन्यास है।

उसकी ऊंचाई में ही मोक्ष है।

लेकिन, सच्चे सिक्कों के साथ खोटे सिक्के भी तो चलते ही हैं।

शायद साथ ही कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि खोटे सिक्के सच्चे सिक्कों के कारण ही चलते हैं। उनके चलन का मूलाधार भी सच्चे सिक्के ही जो होते हैं।

असत्य को चलने के लिए सत्य होने का पाखंड रचना पड़ता है।

और, बेईमानी को ईमानदारी के वस्त्र ओढ़ने पड़ते हैं।

परतंत्रतायें स्वतंत्रताओं के नारों से जीती हैं।

और कारागृह मोक्ष के चित्रों से स्वयं की सजावट कर लेते हैं।

फिर भी सदा, सदैव के लिए धोखा असंभव है।

और आदमी तो आदमी, पशु भी धोखे को पहचान लेते हैं।

मैंने सुना है कि एक अंतर्राष्ट्रीय कुत्ता-प्रदर्शनी हुई।

उसमें आये दो देश के कुत्तों ने एक कुत्ते से पूछा : "यहां के हालचाल कैसे हैं साथी ?"

उत्तर मिला : "खास अच्छे नहीं हैं। खाने-पीने की तंगी है और नगर पर सदा ही धुंध छाई रहती है, जो मेरा गठिये का दर्द बढ़ा देती है।

हां—तुम्हारे यहां हालत कैसी है ?"

कुत्ते ने कहा : "भोजन खूब मिलता है। चाहो जितना मांस और चाहो जितनी हड्डियां। खाने की तो वहां बिलकुल ही तंगी नहीं है।"

लेकिन फिर भी वह अगल-बगल झाँककर जरा नीची आवाज में कहने लगा : "मैं यहीं राजनैतिक आश्रय चाहता हूं। क्या तुम दया करके मेरी कुछ मदद कर सकोगे ?"

पहला कुत्ता स्वभावतः चकित होकर पूछने लगा : "मगर तुम यहां क्यों रहना चाहते हो; जबकि तुम्हीं कहते हो कि तुम्हारे यहां हालत बड़ी अच्छी है ?"

उत्तर मिला : "बात यह है कि मैं कभी-कभी जरा भौंक भी लेना चाहता हूं। कुत्ता हूं तो क्या हुआ—मेरी आत्मा भी स्वतंत्रता चाहती ही है।"

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

०००

प्रिय आनंद आलोक,

प्रेम। छोड़ो स्वयं को तो फिर प्रभु संभालता है।

अपने ही कंधों पर बैठे हैं जो—वे समझें भी तो कैसे समझें !

उतरो स्वयं पर से।

स्व का बोझ बहुत ढोया—अब और न ढोना।

स्व के कारागृह से मुक्त होते ही सर्व का खुला आकाश है—अब उसमें ही उड़ो।

स्व से मुक्ति ही मोक्ष है।

रजनीश के प्रणाम

१५-४-१९७१

०००

प्रिय आनंद आलोक,

प्रेम। सहजता ही संन्यास है।

सहज बहो—जैसे तिनका बहता है सरिता में।

तैरे कि डूबे।

बचाया स्वयं को कि मिटे।

रजनीश के प्रणाम

१४-४-१९७१

०००

अकोला के श्री समीर कुमार ने लिखा है कि वे सेक्स से पीड़ित व पराजित हैं तो आचार्य श्री ने उन्हें लिखा—

प्रिय समीर,

प्रेम। स्वयं से लड़ो मत।

व्यर्थ है वैसी लड़ाई।

क्योंकि, उससे जीत कभी भी फलित नहीं होती है।

स्वयं से लड़ना क्रमिक आत्मघात (Gradual Suicide) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

स्वयं को स्वीकारो।

प्रसन्नता से।

अनुग्रह से।

जो भी है शुभ है।

काम भी, क्रोध भी।

क्योंकि जो भी है प्रभु से है।

उसे स्वीकारो और समझो।

उसमें छुपी संभावनाओं को खोजो और खोलो।

फिर तो काम (Sex) भी राम का ही बीज मालूम होता है।

और क्रोध ही क्षमा का द्वार बन जाता है।

अशुभ (Evil) शुभ (Good) का शत्रु नहीं है।

वरन् **अशुभ मात्र अवरुद्ध शुभ है।**

रजनीश के प्रणाम

१७-१-७०

०००

(बी० एल० नाग, जबलपुर, को लिखा गया पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम । खोजो प्रभु को ।
और, तब तक विश्राम नहीं ।
जगाये रखो संकल्प को जैसे कि सर्द रात्रि में
कोई अग्नि को जलाये ।
भोर होने तक—सूर्योदय तक ।
अंधेरी है रात्रि ।
निराशा जैसी ।
पर संकल्प (will) है पास तो आशा की अग्नि ही है ।
और जानो भली भांति कि सुबह दूर नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम
२४–१–१९७१

०००

(श्री ठाकुर राजेन्द्र सिंह, कुरखेड़ा (चांदा), को लिखा गया पत्र)

मेरे प्रिय ।

प्रेम । उद्देश्य से जीने वाला सदा ही भटक जाता है ।
और उद्देश्य से जीने वाले का जीवन बोझ भी बन जाता है ।
क्योंकि, उद्देश्य है कल और जीना है आज ।
व्यर्थ के तनाव न पालो ।
व्यर्थ के विवाद न सींचो ।
भविष्य से वर्तमान न निकलने दो ।
क्योंकि, वह संभव ही नहीं है ।
वर्तमान से ही भविष्य को निकलने दो ।
सहज ही वह चला आता है ।
उसके लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना है ।
तुम तो जियो आज ।
जीने के लिए आज **पर्याप्त** है ।

न्यूमेन ने गाया है : 'I do not long for the distant scene. One Step is ENOUGH for me'. (दूर के दृश्य की आकांक्षा नहीं मुझे और बस एक ही कदम काफी है ।)

हां—मरने के लिए जरूर आज पर्याप्त नहीं है !

मृत्यु के लिए कल जरूरी है !

इसलिए जो कल (Tomorrow) में जीते हैं, वे जीते नहीं बस मरते ही हैं ।

जियो आज—अभी—पूर्णता से—समग्रता से ।

और कल स्वयं ही अपनी चिंता कर लेगा ।

रजनीश के प्रणाम

३०-१२-१९७०

०००

('आकुल' राजेन्द्र, जबलपुर, को लिखा गया पत्र)

प्रिय राजेन्द्र,

प्रेम । जीवन है एक स्वप्न ।
जन्म और मृत्यु के बीच फैला हुआ एक इन्द्रधनुष ।
है तो भी नहीं है ।
और नहीं है तो भी अंतर नहीं पड़ता है ।
इसलिए, शरीर की चिन्ता छोड़ो ।
और खोजो स्वयं को ।
स्वयं की चेतना को ।
उसे जो शरीर में है और शरीर ही नहीं है ।
उस अशरीरी के प्रति जागते ही सब बदल जाता है ।
जैसे आधीरात हो और अचानक सूर्य निकल आये ।
या जैसे मरुस्थल में अचानक गंगा का आगमन हो जाये ।
बस ऐसे ही सब बदल जाता है ।
व्यर्थ चिन्ताओं में समय न खोओ ।
और व्यर्थ आशाओं में भी नहीं ।
क्योंकि, जीवन में आत्मा के अतिरिक्त और कोई आशा नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

१६-१२-१९७०

०००

भोर-प्रात वो क्या जाने

जो अतीत-तम में जीता है, नव-प्रभात वो क्या जाने !
नैना होते जो देखे ना, भोर-प्रात वो क्या जाने !!

कल-कल में पल-पल खोता है
आज जिसे कल-सा होता है
कल की शान कहे न अघाए—
आज इसी में खो रोता है
समझे आज, आज ना जो भी, कल की बात वो क्या जाने !
··· भोर-प्रात वो क्या जाने !!

ज्यों प्राची में ऊषा वेला
उसके सदृश शैशव खेला
आज रश्मियां प्रखर हुईं जब—
उर तेरे है तम का मेला
दिवस, निशा चिंता में खो दे, दिवस-हास वो क्या जाने !
··· भोर-प्रात वो क्या जाने !!

जीवन है पल-पल का नर्तन
बीज सदृश अंकुर परिवर्तन
आगत हेतु भेंट गत होता—
क्षण-क्षण बदल रहा है जीवन
इस क्षण को जो जान सके ना, गत-अतीत वो क्या जाने !
··· भोर-प्रात वो क्या जाने !!

बहती नदिया-सा जीवन है
नहीं जनम है, नहीं मरन है
छूट रहे यदि कूल-किनारे—
तो आगे मधु आलिंगन है
अभी, यहीं जो है देखे ना, प्रभु-प्रभास वो क्या जाने !
··· भोर-प्रात वो क्या जाने !!

— 'आकुल' राजेन्द्र

ज्योतिष-गणना

(ज्योतिष गणना पर भगवान श्री के साथ श्री महीपाल जी की यह भेंट-वार्त्ता प्रस्तुत है। ज्योतिष गणना पर एक पूरी पुस्तक अलग से प्रकाशित होने वाली है, प्रस्तुत वार्त्ता उसका एक अंश है)

प्रस्तुतकर्त्ता : **स्वामी योग चिन्मय, बंबई.**

महीपाल जी—मेरे प्रश्न का एक भाग पूरा हो चुका है। तब आचार्य श्री के सान्निध्य में मंदिर, तीर्थ, तिलक-टीके और मूर्तिपूजा पर चर्चा हो सकी। आज आचार्य जी के श्री चरणों में निवेदन करूंगा कि हम एक नये विषय पर आचार्य श्री से मार्ग-दर्शन चाहेंगे और वह विषय है ज्योतिष-गणना। यह अछूता विषय है, आचार्य श्री के श्रीमुख से इस पर कभी चर्चा नहीं हुई, तो आचार्य श्री के चरणों में पुनः निवेदन करूंगा कि आज ज्योतिष-गणना के सम्बन्ध में हमारा मार्ग-दर्शन करें।

आचार्यश्री—ज्योतिष शायद सबसे पुराना विषय है और एक अर्थों में सबसे ज्यादा तिरस्कृत विषय भी है। सबसे पुराना इसलिए, कि मनुष्य जाति के इतिहास की जितनी खोज-बीन हो सकी उसमें ज्योतिष ऐसा कोई भी समय नहीं था जब मौजूद न रहा हो। जीसस से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व सुमेर में मिले हुए हड्डी के अवशेषों पर ज्योतिष के चिन्ह अंकित हैं। पश्चिम में, पुरानी से पुरानी जो खोज-बीन हुई है वह जीसस से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व इन हड्डियों की है जिन पर ज्योतिष के चिन्ह और चन्द्र की यात्रा के चिन्ह अंकित है। लेकिन भारत में तो बात और भी पुरानी है।

ऋग्वेद में पंचान्नवे हजार वर्ष पूर्व गृह-नक्षत्रों की जैसी स्थिति थी उसका उल्लेख है। इसी आधार पर लोकमान्य तिलक ने यह तय किया था कि ज्योतिष नब्बे हजार वर्ष से ज्यादा पुराने तो निश्चित ही होने चाहिए। क्योंकि वेद ने यदि पंचान्नवे हजार वर्ष पहले जैसी नक्षत्रों की स्थिति थी, उसका उल्लेख है, तो वह इतना पुराना तो होगा ही। क्योंकि उस समय जो स्थिति थी नक्षत्रों की उसे बाद में जानने का कोई भी उपाय नहीं था। अब हमारे पास ऐसे वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो सके हैं कि हम जान सकें अतीत में कि नक्षत्रों की स्थिति कब कैसी रही होगी।

ज्योतिष की सर्वाधिक गहरी मान्यताएं भारत में पैदा हुईं। सच तो यह है कि ज्योतिष के कारण ही गणित का जन्म हुआ। ज्योतिष-गणना के लिए ही सब से पहले गणित का जन्म हुआ। और इसीलिए अंकगणित के जो अंक हैं वह भारतीय हैं सारी दुनिया की भाषाओं में। एक से लेकर नौ तक जो गणना के अंक हैं वे समस्त भाषाओं में जगत की, भारतीय हैं। और सारी दुनिया में ९ 'डिजिट', नौ अंक स्वीकृत हो गये। उसका भी कुल कारण इतना है कि वे नौ अंक भारत में पैदा हुए और धीरे-धीरे सारे जगत में फैल गये। जिसे आप अंग्रेजी में 'नाइन' कहते हैं—संस्कृत के नौ का ही रूपान्तरण है। जिसे आप 'एट' कहते हैं, वह संस्कृत के अष्ट का ही रूपान्तरण है। १ से लेकर ९ तक शब्द जगत की समस्त भाषाओं में गणित के जो अंकों का प्रचलन है वह भारतीय ज्योतिष के प्रभाव में हुआ। भारत से ज्योतिष की पहली किरणें सुमेर की सभ्यता में पहुंचीं। सुमेरियन्स ने सबसे पहले ईसा से छः हजार वर्ष पूर्व पश्चिम के जगत के लिए ज्योतिष का द्वार खोला। सुमेरियन्स ने सब से पहले नक्षत्रों के वैज्ञानिक अध्ययन की आधार शिलाएं रखीं। उन्होंने बड़े ऊंचे, सात सौ फीट ऊंचे मीनार बनाये और मीनारों पर सुमेरियन पुरोहित चौबीस घंटे आकाश का अध्ययन करते थे। दो कारणों से— एक तो सुमेरियन को इस गहरे सूत्र का पता चल गया था कि मनुष्य के जगत में जो भी घटित होता है, उस घटना का प्रारंभिक स्रोत नक्षत्रों से किसी न किसी भांति संबंधित है।

जीसस से छः हजार वर्ष पहले सुमेरियन्स की यह धारणा कि पृथ्वी पर जो भी बीमारी पैदा होती है, जो भी महामारी पैदा होती है वह सब नक्षत्रों से संबंधित है। अब तो इसके लिए वैज्ञानिक आधार मिल गये हैं और जो लोग आज के विज्ञान को समझते हैं वे कहते हैं कि सुमेरियन्स ने मनुष्य जाति का असली इतिहास प्रारंभ किया। इतिहासज्ञ कहते हैं कि सब तरह का इतिहास सुमेर से शुरू होता है। १९२० में चीजेवस्की नाम के एक रूसी वैज्ञानिक ने इस बात की खोज-बीन की कि सूरज पर हर ग्यारहवें वर्ष में 'पीरियाडिकली' बहुत बड़ा विस्फोट होता है। सूर्य पर हर ग्यारहवें वर्ष में आणविक विस्फोट होता है। और चीजेवस्की ने यह खोज-बीन की है कि जब भी सूरज पर ग्यारहवें वर्ष में आणविक-विस्फोट होता है तभी पृथ्वी पर युद्ध और क्रांतियों के सूत्रपात होते हैं। और उसमें कोई सात सौ वर्ष के लम्बे इतिहास में सूर्य पर जब भी दुर्घटना घटती है, तभी पृथ्वी पर दुर्घटना घटती है। इसका इतना वैज्ञानिक विश्लेषण किया कि स्टेलिन ने उसे १९२० में उठाकर जेल में डाल दिया। स्टेलिन के मरने के बाद ही चीजेवस्की छूट सका।

क्योंकि स्टेलिन के लिए तो अजीब बात हो गयी। मार्क्स का और कम्युनिस्टों का ख्याल है कि पृथ्वी पर जो क्रांतियां होती हैं उनका कारण मनुष्य के बीच आर्थिक वैभिन्य हैं। और चीजेवस्की कहता है कि क्रांतियों का कारण सूरज पर हुए विस्फोट हैं। अब सूरज पर हुए विस्फोट और मनुष्य के जीवन की गरीबी और अमीरी का क्या संबंध है? अगर चीजेवस्की ठीक कहता है तो मार्क्स की सारी की सारी व्याख्या मिट्टी में चली जाती है। तब क्रांतियों का कारण वर्गीय नहीं रह जाता, तब क्रांतियों का कारण ज्योतिषीय हो जाता है। चीजेवस्की को गलत तो सिद्ध नहीं किया जा सका क्योंकि सात सौ साल की जो गणना उसने दी थी वह इतनी वैज्ञानिक थी और सूरज में हुए विस्फोटों के साथ इतना गहरा संबंध उसने पृथ्वी पर घटने वाली घटनाओं का स्थापित किया था कि उसे गलत सिद्ध करना तो कठिन था। लेकिन उसे साइबेरिया में डाल देना आसान था। स्टेलिन के मर जाने के बाद ही चीजेवस्की को ख्रुश्चेव साइबेरिया से मुक्त कर पाया। इस आदमी के पचास साल जीवन के कीमती साइबेरिया में नष्ट हुए। छूटने के बाद भी वह चार छः महीने से ज्यादा जीवित नहीं रह सका, लेकिन छः महीने में भी वह अपनी स्थापना के लिए और नये प्रमाण इकट्ठे कर गया। पृथ्वी पर जितनी महा-मारियां फैलती हैं, उन सबका संबंध भी वह सूरज से जोड़ गया है।

सूरज, जैसा हम साधारणतः सोचते हैं ऐसा कोई निष्क्रिय अग्नि का गोला नहीं है, अत्यंत सक्रिय और प्रतिपल सूरज की तरंगों में रूपांतरण होते रहते हैं। और सूरज की तरंगों का जरा सा रूपांतरण भी पृथ्वी के प्राणों को कंपित करता है। इस पृथ्वी पर कुछ भी ऐसा घटित नहीं होता जो सूरज पर घटित हुए बिना घटित हो जाता हो। जब सूर्य का ग्रहण होता है तो पक्षी जंगलों में गीत गाना, चौबीस घण्टे पहले से बन्द कर देते हैं। पूरे ग्रहण के समय तो सारी पृथ्वी मौन हो जाती है, पक्षी गीत गाना बन्द कर देते हैं। सारे जंगलों के जानवर भयभीत हो जाते हैं, किसी बड़ी आशंका से पीड़ित हो जाते हैं। बन्दर वृक्षों को छोड़कर नीचे आ जाते हैं। भीड़ लगाकर किसी सुरक्षा का उपाय करने लगते हैं। और एक आश्चर्य कि बन्दर जो निरन्तर बात-चीत और शोर-गुल में लगे रहते हैं, सूर्य ग्रहण के वक्त बन्दर इतने मौन हो जाते हैं जितने साधु और संन्यासी भी नहीं होते। चीजेवस्की ने ये सारी बातें स्थापित की हैं।

सुमेर में सबसे पहले यह ख्याल पैदा हुआ। उसके बाद स्विस में पैरासि-लीसस नाम का एक चिकित्सक उसने एक बहुत अनूठी मान्यता स्थापित की और वह मान्यता आज नहीं कल, सारे मेडिकल साइंस को बदलने वाली सिद्ध

होगी। अब तक उस मान्यता पर बहुत जोर नहीं दिया जा सका क्योंकि ज्योतिष तिरस्कृत विषय है। सर्वाधिक पुराना, लेकिन सर्वाधिक तिरस्कृत; यद्यपि सर्वाधिक मान्य भी। अभी फ्रांस में पिछले वर्ष गणना की गई तो ४७ प्रतिशत लोग ज्योतिष में विश्वास करते हैं कि वह विज्ञान है। फ्रांस में, अमरीका में मौजूद पाँच हजार बड़े ज्योतिषी दिन-रात काम में लगे रहते हैं और उनके पास इतने 'कस्टमर्स' हैं कि वे काम निपटा नहीं पाते। करोड़ों डालर अमरीकी प्रतिवर्ष ज्योतिषियों को चुकाता है। अन्दाज है कि सारी पृथ्वी पर कोई अठहत्तर प्रतिशत लोग ज्योतिष में विश्वास करते हैं। लेकिन वे अठहत्तर प्रतिशत लोग सामान्य हैं। वैज्ञानिक, विचारक, बुद्धिवादी ज्योतिष की बात सुनकर ही चौंक जाते हैं।

सी० जे० जुंग ने कहा है कि तीन सौ वर्षों से विश्वविद्यालयों के द्वार ज्योतिष के लिए बन्द हैं; यद्यपि आने वाले तीस वर्षों में ज्योतिष तुम्हारे दरवाजों को तोड़कर विश्वविद्यालयों में पुनः प्रवेश पाकर रहेगा। पाकर रहेगा प्रवेश इसलिए कि ज्योतिष के सम्बन्ध में जो-जो दावे किये गये थे उनको अब तक सिद्ध करने का उपाय नहीं था, लेकिन अब उनको सिद्ध करने का उपाय है। पैरासिलीसस ने एक मान्यता को गति दी और वह मान्यता यह थी कि आदमी तभी बीमार होता है जब उसके और उसके जन्म के साथ जुड़े हुए नक्षत्रों के बीच का तारतम्य टूट जाता है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। पैरासिलीसस से बहुत पहले की बात है, पाइथागोरस यूनान में हुआ, ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व, आज से कोई पच्चीस सौ वर्ष पूर्व। पाइथागोरस ने 'प्लेनेटरी हार्मनी', ग्रहों के बीच एक संगीत का संबंध है, इसके संबंध में एक बहुत बड़े दर्शन को जन्म दिया था। और पाइथागोरस ने जब यह बात कही थी तब वह भारत और इजिप्त इन दो मुल्कों की यात्रा करके वापस लौटा था। और पाइथागोरस जब भारत आया तब भारत बुद्ध और महावीर के विचारों से तीव्रता से आप्लावित था। पाइथागोरस ने हिन्दुस्तान से वापस लौटकर जो बातें कही हैं उसमें उसने महावीर और विशेषकर जैनियों के संबंध में बहुत सी बातें महत्वपूर्ण कहीं हैं। उसने जैनों को जैनोसोफिस्ट कहकर पुकारा है। सोफिस्ट का मतलब होता है दार्शनिक और जैनो का मतलब जैन। तो जैन दार्शनिक को पाइथागोरस ने जैनोसोफिस्ट कहा है। नग्न रहते हैं, यह सारी बात की है। पाइथागोरस मानता था कि प्रत्येक नक्षत्र या प्रत्येक ग्रह या उपग्रह जब यात्रा करता है अंतरिक्ष में, तो उसकी यात्रा के कारण एक विशेष ध्वनि पैदा होती है। प्रत्येक नक्षत्र की गति एक विशेष ध्वनि पैदा करती है और प्रत्येक नक्षत्र की अपनी व्यक्तिगत, निजी ध्वनि है।

और इन सारे नक्षत्रों की ध्वनियों का एक तालमेल है, जिसे वह विश्व की संगीतबद्धता, 'हार्मनी' कहता था। जब कोई मनुष्य जन्म लेता है तब उस जन्म के क्षण में इन नक्षत्रों के बीच जो संगीत की व्यवस्था होती है वह उस मनुष्य के प्राथमिक, सरलतम, संवेदनशील चित्त पर अंकित हो जाती है। वही उसे जीवन भर स्वस्थ और अस्वस्थ करती है। जब भी वह अपनी उस मौलिक जन्म के साथ पायी गई संगीत व्यवस्था के साथ तालमेल बना लेता है तो स्वस्थ बना लेता है। और जब उसका तालमेल छूट जाता है तो अस्वस्थ हो जाता है। पैरासिलीसस ने इस सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण काम किया है। वह किसी मरीज को दवा नहीं देता था जब तक उसकी जन्म-कुण्डली न देख ले। और बड़ी हैरानी की बात है कि पैरासिलीसस ने जन्म-कुण्डलियां देखकर ऐसे मरीजों को ठीक किया जिनको चिकित्सक कठिनाई में पड़ गये थे और ठीक नहीं कर पाते थे। उसका कहना था, जब तक मैं यह न जान लूं कि यह व्यक्ति किन नक्षत्रों की स्थिति में पैदा हुआ है तब तक इसके अन्तर्संगीत के सूत्र को भी पकड़ना संभव नहीं है। और जब तक मैं यह न जान लूं कि इसके अन्तर्संगीत की व्यवस्था क्या है, इसे कैसे हम स्वस्थ करूं—क्योंकि स्वास्थ्य का क्या अर्थ है ? इसे थोड़ा समझ लें।

अगर साधारणतः हम चिकित्सक से पूछें कि स्वास्थ्य का क्या अर्थ है तो वह इतना ही कहेगा कि बीमारी का न होना। पर उसकी परिभाषा 'निगेटिव' है, नकारात्मक है और यह दुखद बात है कि स्वास्थ्य की परिभाषा हमें बीमारी से करनी पड़े। स्वास्थ्य तो 'पॉजीटिव' चीज है, बीमारी 'निगेटिव' है, नकारात्मक है। स्वास्थ्य तो स्वभाव है, बीमारी तो आक्रमण है। तो स्वास्थ्य की परिभाषा हमें बीमारी से करनी पड़े, यह बात अजीब है। घर में रहने वाले की परिभाषा मेहमान से करनी पड़े तो बात अजीब है। स्वास्थ्य तो हमारे साथ है,बीमारी कभी-कभी होती है। स्वास्थ्य तो हम लेकर पैदा होते हैं, बीमारी उस पर आती है। पर हम स्वास्थ्य की परिभाषा अगर चिकित्सकों से पूछें तो वह यही कह पाते हैं कि बीमारी नहीं है तो स्वास्थ्य है। पैरासिलीसस कहता था, यह व्याख्या गलत है। स्वास्थ्य की पॉजेटिव 'डेफिनिशन' होनी चाहिए। पर उस 'पॉज़ीटिव डैफिनिशन' को, विधायक व्याख्या को कहां से पकड़ेंगे। तब पैरासिलीसस कहता था, जब तक हम तुम्हारे अन्तर्निहित संगीत को न जान लें—वही जो तुम्हारा स्वास्थ्य है—तब तक हम ज्यादा से ज्यादा तुम्हारी बीमारियों से तुम्हारा छुटकारा करवा सकते हैं। लेकिन हम एक बीमारी से तुम्हें छुड़ायेंगे और तुम दूसरी बीमारी को तत्काल पकड़ लोगे; क्योंकि तुम्हारे भीतरी संगीत के सम्बन्ध में कुछ भी

नहीं किया जा सका। असली बात तो वही थी कि तुम्हारा भीतरी संगीत स्थापित हो जाय। इस सम्बन्ध में, पैरासिलीसस को हुए तो कोई पांच सौ वर्ष होते हैं, उसकी बात भी खो गयी थी। लेकिन अब पिछले बीस वर्षों में, १९५० के बाद दुनिया में ज्योतिष का पुनःआविर्भाव हुआ है। और आपको जानकर हैरानी होगी कि कुछ नये विज्ञान पैदा हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में आपसे कह दूं तो फिर पुराने विज्ञान को समझना आसान हो जायेगा।

१९५० में एक नयी साइंस का जन्म हुआ। उस साइंस का नाम है 'कास्मिक केमिस्ट्री', ब्रह्म-रसायन। उसको जन्म देने वाला आदमी है जियाजारजी गिआरडी। यह आदमी इस सदी के कीमती से कीमती, थोड़े से आदमियों में एक है। इस आदमी ने वैज्ञानिक आधारों पर प्रयोगशालाओं में अनन्त प्रयोगों को करके, यह सिद्ध किया है कि जगत, पूरा जगत एक 'आर्गनिक यूनिटी' है। पूरा जगत एक शरीर है। और अगर मेरी अंगुली बीमार पड़ जाती है तो मेरा पूरा शरीर प्रभावित होता है, शरीर का अर्थ होता है कि टुकड़े अलग-अलग नहीं हैं, संयुक्त हैं—जीवन्त रूप से इकट्ठे हैं। अगर मेरे आंख में तकलीफ होती है तो मेरे पैर का अंगूठा भी अनुभव करता है। और अगर मेरे पैर को चोट लगती है तो मेरे हृदय को भी खबर मिलती है। और अगर मेरा मस्तिष्क रुग्ण हो जाता है तो मेरा शरीर पूरा का पूरा बेचैन हो जायेगा। और अगर मेरा पूरा शरीर नष्ट कर दिया जाय तो मेरे मस्तिष्क को खड़े होने के लिए जगह मिलनी मुश्किल हो जायेगी। मेरा शरीर एक 'आर्गनिक यूनिटी' है—एक एकता है जीवन्त। उसमें कोई भी एक चीज को छुआ तो सब प्रभावित होता है, सब प्रभावित हो जाता है। 'कास्मिक केमिस्ट्री' कहती है कि पूरा ब्रह्माण्ड एक शरीर है। उसमें कोई भी चीज अलग-अलग नहीं है, सब संयुक्त है। इसलिए कोई तारा कितनी ही दूर क्यों न हो, वह भी जब बदलता है तो हमारे हृदय को हमारे हृदय की गति को बदल जाता है। और सूरज चाहे कितने ही फासले पर क्यों न हो, जब वह ज्यादा उत्तप्त होता है तब हमारे खून की धाराएं बदल जाती हैं। हर ग्यारह वर्षों में जब पिछली बार सूरज पर बहुत ज्यादा गतिविधि चल रही थी और अग्नि के विस्फोट चल रहे थे तो एक जापानी चिकित्सक तोमातो बहुत हैरान हुआ। वह चिकित्सक स्त्रियों के खून पर निरन्तर काम कर रहा था बीस वर्षों से। स्त्रियों के खून की एक विशेषता है जो पुरुषों के खून की नहीं। उनके मासिक धर्म के समय उनका खून पतला हो जाता है और पुरुष का खून पूरे समय एकसा रहता है। स्त्रियों का खून मासिक धर्म के समय पतला हो जाता है या गर्भ जब उनके पेट में होता है तब

उनका खून पतला हो जाता है। पुरुष और स्त्री के खून में एक बुनियादी फर्क तोमातो कर रहा था। लेकिन जब सूरज पर बहुत जोर से तूफान चल रहे थे आणविक शक्तियों के—हर ग्यारहवें वर्ष में चलते हैं—वह चकित हुआ कि पुरुषों का खून भी पतला हो जाता है। जब सूरज पर आणविक तूफान चलता है तब पुरुष का खून भी पतला हो जाता है। यह बड़ी नयी घटना थी, यह इसके पहले कभी 'रेकार्ड' नहीं की गयी थी कि पुरुष के खून पर सूरज पर चलने वाले तूफान का कोई प्रभाव पड़ेगा। और अगर खून पर प्रभाव पड़ सकता है तो फिर किसी भी चीज पर प्रभाव पड़ सकता है।

एक दूसरा अमरीकन विचारक है—फ्रैंक ब्राउन। वह अंतरिक्ष यात्रियों के लिए सुविधाएं जुटाने का काम करता रहा है। उसकी आधी जिन्दगी, अंतरिक्ष में जो मनुष्य यात्रा करने जायेंगे, उनको तकलीफ न हो इसके लिए काम करने की रही है। सबसे बड़ी विचारणीय बात यही थी कि पृथ्वी को छोड़ते ही अंतरिक्ष में न मालूम कितने प्रभाव होंगे। न मालूम कितनी धाराएं होंगी रेडिएशन की, किरणों की—वह आदमी पर क्या प्रभाव करेंगी। लेकिन दो हजार साल से ऐसा समझा जाता रहा है अरस्तू के बाद पश्चिम में कि अंतरिक्ष शून्य है, वहां कुछ है ही नहीं—जो दो सौ मील के बाद पृथ्वी पर हवाएं समाप्त हो जाती हैं, फिर अंतरिक्ष शून्य है। लेकिन अंतरिक्ष यात्रियों की खोज ने सिद्ध किया कि वह बात गलत है। अंतरिक्ष शून्य नहीं है, बहुत भरा हुआ है। और न तो शून्य है, न मृत है; बहुत जीवन्त है। सच तो यह है कि पृथ्वी की दो सौ मील की हवाओं की पर्तें सारे प्रभावों को हम तक आने से रोकती हैं। अंतरिक्ष में तो अद्भुत प्रवाहों की धाराएं बहती रहती हैं। उनको आदमी सह पायेगा या नहीं, आप जानकर हैरान होंगे और हंसेंगे भी कि आदमी को भेजने के पहले ब्राउन ने आलू भेजे अंतरिक्ष में। क्योंकि ब्राउन का कहना है कि आलू और आदमी में बहुत भीतरी फर्क नहीं। अगर आलू सड़ जायेगा तो आदमी नहीं बच सकेगा और अगर आलू बच सकता है तो ही आदमी बच सकेगा। आलू बहुत मजबूत प्राणी है। और आदमी तो बहुत संवेदनशील है। अगर आलू भी नहीं बच सकता अंतरिक्ष में और सड़ जायेगा, तो आदमी के बचने का कोई उपाय नहीं। अगर आलू लौट आता है जीवित, मरता नहीं है और उसे जमीन में बोने पर अंकुर निकल आता है तो फिर आदमी को भेजा जा सकता है। तब भी डर है कि आदमी सह पायेगा या नहीं। इससे एक और हैरानी की बात ब्राउन ने सिद्ध की कि आलू जमीन के भीतर पड़ा हुआ या कोई भी

बीज जमीन के भीतर पड़ा हुआ बढ़ता है सूरज के ही सम्बन्ध से। सूरज ही उसे जगाता, उठाता है। उसके अंकुर को पुकारता और ऊपर उठाता है।

ब्राउन एक दूसरे शास्त्र का अन्वेषक है और उस शास्त्र को अभी ठीक-ठीक नाम मिलना शुरू हो रहा है। लेकिन अभी उसे कहते हैं 'प्लेनेटरी हेरेडिटी', उपग्रही वंशानुक्रम। अंग्रेजी में शब्द है होरोस्कोप। वह यूनानी होरोस्कोपस का रूप है। होरोस्कोप यूनानी शब्द का अर्थ होता है—मैं देखता हूं जन्मते हुए ग्रह को। असल में जब एक बच्चा पैदा होता है तब उसी समय पृथ्वी के चारों ओर क्षितिज पर अनेक नक्षत्र जन्म लेते हैं। उठते हैं, जैसे सूरज उठता है सुबह। जैसे सूरज ऊगता है, सांझ डूबता है, ऐसे ही चौबीस घण्टे अन्तरिक्ष में नक्षत्र ऊगते हैं और डूबते हैं। जब एक बच्चा पैदा हो रहा है—समझें सुबह ६ बजे बच्चा पैदा हो रहा है, उसी वक्त सूरज भी पैदा हो रहा है, उसी वक्त और कुछ नक्षत्र पैदा हो रहे हैं, कुछ नक्षत्र डूब रहे हैं, कुछ नक्षत्र ऊपर हैं, कुछ नक्षत्र उतार पर चले गये, कुछ नक्षत्र चढ़ाव पर हैं। यह बच्चा जब पैदा हो रहा है तब अंतरिक्षों की—अंतरिक्ष में नक्षत्रों की एक स्थिति है। अब तक ऐसा समझा जाता था और अभी भी अधिक लोग, जो बहुत गहराई से परिचित नहीं हैं वह ऐसा ही सोचते हैं कि चांद-तारों से आदमी के जन्म का क्या लेना-देना। चांद-तारे कहीं भी हों, इससे एक गांव में बच्चा पैदा हो रहा है, इससे क्या फर्क पड़ेगा! फिर यह भी कहते हैं कि एक ही बच्चा पैदा नहीं होता, एक तिथि में, एक नक्षत्र की स्थिति में लाखों बच्चे पैदा होते हैं। उनमें से एक प्रेसिडेंट बन जाता है किसी मुल्क का, बाकी तो नहीं बन पाते। एक उनमें से सौ वर्ष का होकर मरता है, दूसरा दो दिन का होकर मर जाता है। एक उसमें से बहुत बुद्धिमान होता है और एक निर्बुद्धि रह जाता है। तो साधारण देखने पर पता चलता है कि इन ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का किसी के बच्चे के पैदा होने से, होरोस्कोप से क्या सम्बन्ध हो सकता है? यह तर्क इतना सीधा और साफ मालूम होता है कि चांद-तारे एक बच्चे के जन्म की चिन्ता भी नहीं करते हैं। और फिर एक बच्चा ही पैदा नहीं होता, एक स्थिति में लाखों बच्चे पैदा होते हैं; पर लाखों बच्चे एक से नहीं होते। इन तर्कों से ऐसा लगने लगा था, तीन वर्षों से तर्क दिये जा रहे हैं कि कोई सम्बन्ध नक्षत्रों से व्यक्ति के जन्म का नहीं है। लेकिन ब्राउन पिकाडी और तोमातो—इन सारे लोगों की, इन सबकी खोज का एक अद्भुत परिणाम हुआ है और वह यह कि ये वैज्ञानिक कहते हैं कि अभी हम यह तो नहीं कह सकते कि व्यक्तिगत रूप से कोई बच्चा प्रभावित होगा, लेकिन अब हम

यह पक्के रूप से कह सकते हैं कि जीवन प्रभावित होता है। एक बात, व्यक्तिगत रूप से बच्चा प्रभावित होगा, हम अभी नहीं कह सकते हैं, लेकिन जीवन निश्चित रूप से प्रभावित होता है। और अगर जीवन प्रभावित होता है तो हमारी खोज जैसे-जैसे सूक्ष्म होगी वैसे-वैसे हम पायेंगे कि व्यक्ति भी प्रभावित होता है। इससे एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है। जैसा सोचा जाता रहा है, वह तथ्य नहीं है। जैसा सोचा जाता रहा है कि ज्योतिष विकसित विज्ञान नहीं है; प्रारम्भ उसका हुआ और फिर वह विकसित नहीं हो सका। लेकिन मेरे देखे स्थिति उल्टी है। ज्योतिष किसी सभ्यता के द्वारा बहुत बड़ा विज्ञान है, फिर वह सभ्यता खो गयी और हमारे हाथ में ज्योतिष के अधूरे सूत्र रह गये।

ज्योतिष कोई नया विज्ञान नहीं है, जिसे विकसित होना है, बल्कि कोई विज्ञान है जो पूरी तरह विकसित हुआ था और फिर जिस सभ्यता ने उसे विकसित किया वह खो गयी। और सभ्यताएं रोज आती हैं और रोज खो जाती हैं। फिर उनके द्वारा विकसित चीजें भी अपने मौलिक आधार खो देती हैं, सूत्र भूल जाती हैं, उनकी आधारशिलाएं खो जाती हैं। विज्ञान, आज इसे स्वीकार करने के निकट पहुंच रहा है कि जीवन प्रभावित होता है। और एक छोटे बच्चे के जन्म के समय उसके चित्त की स्थिति ठीक वैसी ही होती है जैसे बहुत 'सेंसिटिव फोटो प्लेट' की। इस पर दो तीन बातें और ख्याल में ले लें; ताकि समझ में आ सकें कि जीवन प्रभावित होता है। और अगर जीवन प्रभावित होता है तो ही ज्योतिष की कोई संभावना निर्मित होती है अन्यथा निर्मित नहीं होती।

जुड़वां बच्चों को समझने की थोड़ी कोशिश करें। दो तरह के जुड़वां बच्चे होते हैं। एक तो जुड़वां बच्चे होते हैं जो एक ही अण्डे से पैदा होते हैं। और दूसरे जुड़वां बच्चे होते हैं जो होते तो जुड़वां हैं, लेकिन दो अंडों से पैदा होते हैं। मां के पेट में दो अंडे होते हैं, दो बच्चे पैदा होते हैं। कभी-कभी एक अण्डा होता है और एक अण्डे के भीतर दो बच्चे होते हैं। एक अण्डा से जो दो बच्चे पैदा होते हैं वह बड़े महत्वपूर्ण हैं ; क्योंकि उनके जन्म का क्षण बिलकुल एक होता है। दो अण्डों से जो बच्चे पैदा होते हैं वह जुड़वां हम कहते जरूर हैं लेकिन उनके जन्म का क्षण एक नहीं होता। और एक बात समझ लें कि जन्म दोहरी बात है। जन्म का पहला अर्थ तो है गर्भधारण। ठीक जन्म तो उस दिन होता है जिस दिन मां के पेट में गर्भ आरोपित होता है। जिसको आप जन्म कहते हैं, वह नम्बर दो का जन्म है, जब बच्चा मां के पेट से बाहर आता है। अगर हमें ज्योतिष की पूरी खोज-बीन करनी हो—

जैसा कि हिंदुओं ने की थी, अकेले हिन्दुओं ने की थी और उसके बड़े उपयोग किये थे। तो असली सवाल यह नहीं है कि बच्चा कब पैदा होता है, असली सवाल यह है कि बच्चा कब गर्भ में प्रारम्भ करता है अपनी यात्रा। गर्भ कब निर्मित होता है, क्योंकि ठीक जन्म वही है। इसलिए हिन्दुओं ने तो यह भी तय किया था कि ठीक जिस भांति के बच्चे को जन्म देना हो उस भांति के ग्रह-नक्षत्र में यदि संभोग किया जाय और गर्भधारण हो जाय, तो उस तरह का बच्चा पैदा होगा। अब इसमें मैं थोड़ा पीछे आपको कुछ कहूंगा; क्योंकि इस सम्बन्ध में भी काफी काम इधर हुआ है और बहुत-सी बातें साफ हुई हैं।

साधारणतः हम सोचते हैं कि एक बच्चा सुबह छः बजे पैदा होता है। तो छः बजे पैदा हो, इसलिए छः बजे प्रभात में जो नक्षत्रों की स्थिति होती है उससे प्रभावित होता है। लेकिन ज्योतिष को जो गहरा जानते हैं वह कहते हैं, उसके छः बजे पैदा होने की वजह से ग्रह-नक्षत्र उस पर प्रभाव डालते हैं। ऐसा नहीं, वह जिस तरह के प्रभावों के बीच पैदा होना चाहता है उस घड़ी और नक्षत्र को जन्म के लिए चुनता है। यह बिलकुल भिन्न बात है। बच्चा जब पैदा हो रहा है, ज्योतिष की गहन खोज करने वाले लोग कहेंगे कि वह अपने ग्रह-नक्षत्र चुनता है कि कब उसे पैदा होना है। और गहरे जायेंगे तो वह अपना गर्भाधारण भी चुनता है। प्रत्येक आत्मा अपना गर्भाधारण चुनती है कि कब उसे गर्भ स्वीकार करना है—किस क्षण में। क्षण छोटी घटना नहीं है। क्षण का अर्थ पूरा विश्व उस क्षण में कैसा है और उस क्षण में पूरा विश्व किस तरह की संभावनाओं के द्वार खोलता है। जब एक अण्डे में दो बच्चे एक साथ गर्भाधारण लेते हैं, तो उनके गर्भाधारण का क्षण एक ही होता है और उनके जन्म का क्षण भी एक होता है। अब यह बहुत मजे की बात है कि एक ही अण्डे से पैदा हुए दो बच्चों का जीवन इतना एक जैसा होता है कि यह कहना मुश्किल है कि जन्म का क्षण प्रभाव नहीं डालता। एक अण्डे से पैदा हुए दो बच्चे उनका 'आई० क्यू०', उनका बुद्धिमाप करीब-करीब बराबर होता है। और जो थोड़ा-सा भेद दिखता है, वह जो जानते हैं वह कहते हैं, वह हमारे 'मेजरमेंट' की गलती के कारण है। अभी तक हम ठीक मापदण्ड विकसित नहीं कर पाये हैं, जिनसे हम बुद्धि का अंक नाप सकें। थोड़ा-सा जो भेद कभी पड़ता है, वह हमारे तराजू की भूल चूक है। अगर एक अण्डे से पैदा हुए दो बच्चों को बिल्कुल अलग-अलग पाला जाय तो भी उनके बुद्धि-अंक में कोई फर्क नहीं पड़ता। एक को हिन्दुस्तान में पाला जाय और एक को चीन में पाला जाय और कभी एक दूसरे को पता भी न चलने दिया जाय। ऐसी कुछ घटनाएं घटी हैं जब दोनों बच्चे अलग-अलग पले, बड़े

हुए; लेकिन उनके बुद्धि-अंक में कोई फर्क नहीं पड़ता है। बड़ी हैरानी की बात है, बुद्धि-अंक ऐसी चीज है कि जन्म की 'पोटेंशियलिटी' से जुड़ी है। लेकिन वह जो चीन में जुड़वां बच्चा है एक ही अंडे का, जब उसको जुकाम होगा, तब जो भारत में बच्चा है उसको भी जुकाम होगा। आम तौर से एक अण्डे से पैदा हुए बच्चे एक ही साल में मरते हैं। ज्यादा से ज्यादा उनकी मृत्यु में फर्क तीन महीने का होता है और कम से कम तीन दिन का। पर वर्ष वही होता है। अब तक ऐसा नहीं हो सका कि एक ही अण्डे से पैदा हुए दो बच्चों की मृत्यु के बीच वर्ष का फर्क पड़ा हो। तीन महीने से ज्यादा का फर्क नहीं पड़ता है। अगर एक बच्चा मर गया है तो हम मान सकते हैं कि तीन दिन के बाद और तीन महीने के बीच दूसरा बच्चा मर जायगा। इनके रुझान, इनके ढंग, इनके भाव समानांतर होते हैं। और करीब-करीब ऐसा मालूम पड़ता है कि ये दोनों एक ही ढंग से जीते हैं। एक दूसरे की कापी की भांति होते हैं। इनका इतना एक जैसा होना और बहुत-सी बातों से सिद्ध होता है।

हम सबकी चमड़ियां अलग-अलग हैं—'इण्डीवीजुअल' हैं। अगर मेरा हाथ टूट जाय और मेरी चमड़ी बदलनी पड़े तो आपकी चमड़ी मेरे हाथ के काम नहीं आयेगी, मेरे ही शरीर की चमड़ी उखाड़कर लगानी पड़ेगी। इस पूरी जमीन पर कोई आदमी नहीं खोजा जा सकता, जिसकी चमड़ी मेरे काम आ जाय। क्या बात है? 'फिजियोलाजिस्ट' से हम पूछें कि दोनों की चमड़ी की बनावट में कोई भेद है? चमड़ी के रसायन में कोई भेद है? चमड़ी में जो तत्व निर्मित करते हैं चमड़ी को, तो उसमें कोई भेद है? तो कोई भेद नहीं है। मेरी चमड़ी और दूसरे आदमी की चमड़ी को अगर हम रख दें एक वैज्ञानिक को जांच करने के लिए, तो वह यह न बता पायेगा कि ये दो आदमियों की चमड़ियां हैं। चमड़ियों में कोई भेद नहीं है, लेकिन फिर भी हैरानी की बात है कि मेरी चमड़ी में दूसरे की चमड़ी नहीं बिठायी जा सकती। मेरा शरीर उसे इन्कार कर देता है। वैज्ञानिक जिसे नहीं पहचान पाते कि कोई भेद है, लेकिन मेरा शरीर पहचानता है। मेरा शरीर इंकार कर देता है कि इसे स्वीकार नहीं करेंगे। हां, एक ही अण्डे से पैदा हुए दो बच्चों की चमड़ी 'ट्रांसप्लांट' हो सकती है—सिर्फ एक दूसरे की चमड़ी को एक दूसरे पर बिठाया जा सकता है, शरीर इन्कार नहीं करेगा। क्या कारण होगा? क्या वजह होगी? अगर हम कहें, एक ही मां-बाप के बेटे हैं, तो दो भाई भी एक ही मां-बाप के बेटे हैं, उनकी चमड़ी नहीं बदली जा सकती? सिवाय इसके कि ये दोनों बेटे एक ही क्षण में निर्मित हुए हैं, और कोई इनमें समानता नहीं है। क्योंकि उसी मां

और उसी बाप से पैदा हुए दूसरे भाई भी हैं, उन पर चमड़ी काम नहीं करती है— उनकी चमड़ी एक दूसरे पर नहीं बदली जा सकती । सिवा इनके 'बर्थ मोमेंट' के बाकी तो सब एक-सा है—वही मां-बाप हैं, सिर्फ एक बात बड़ी भिन्न है और वह है—इनके जन्म का क्षण । क्या जन्म का क्षण इतना महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है कि उम्र भी दोनों की करीब-करीब, बुद्धिमाप करीब-करीब, दोनों की चमड़ियों का ढंग एक-सा, दोनों के शरीर के व्यवहार करने की बात एक-सी, दोनों बीमार पड़ते हैं तो एक-सी बीमारियों से, दोनों स्वस्थ होते हैं तो एक-सी दवाओं से । क्या जन्म का क्षण इतना प्रभावी हो सकता है ? ज्योतिष कहता रहा है, इससे भी ज्यादा प्रभावी है जन्म का क्षण ।

लेकिन आज तक ज्योतिष के लिए वैज्ञानिक सहमति नहीं थी, पर अब सहमति बढ़ती जाती है । इस सहमति में कई नये प्रयोग सहयोगी बने हैं । एक तो, जैसे ही हमने 'आर्टीफीशियल सेटेलाइट', हमने कृत्रिम उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़े, वैसे ही हमें पता चला कि सारे जगत से, सारे ग्रह-नक्षत्रों से, सारे तारों से निरंतर अनंत प्रकार की किरणों का जाल प्रवाहित होता है, जो पृथ्वी पर टकराता है । और पृथ्वी पर कोई भी ऐसी चीज नहीं है, जो उससे अप्रभावित छूट जाय । हम जानते हैं कि चांद से समुद्र प्रभावित होता है, लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि समुद्र में पानी और नमक का जो अनुपात है वही आदमी के शरीर में पानी और नमक का अनुपात है—'द सेम प्रपोर्शन' और आदमी के शरीर में ६५ प्रतिशत पानी है और नमक और पानी का वही अनुपात है, जो अरब की खाड़ी में है । अगर समुद्र का पानी प्रभावित होता है चांद से, तो आदमी के शरीर का भीतर का पानी क्यों प्रभावित नहीं होगा । अभी इस सम्बन्ध में जो खोज-बीन हुई है उसमें दो तीन तथ्य ख्याल में ले लेने जैसे हैं, वह यह कि पूर्णिमा के निकट आते-आते सारी दुनिया में पागलपन की संख्या बढ़ती है । और अमावस के दिन दुनिया में सबसे कम लोग पागल होते हैं, पूर्णिमा के दिन सर्वाधिक । चांद के बढ़ने के साथ अनुपात पागलों का बढ़ना शुरू होता है । पूर्णिमा के दिन पागलखानों में सर्वाधिक लोग प्रवेश करते हैं और अमावस के दिन पागलखानों से सर्वाधिक लोग बाहर जाते हैं । अब तो इसके 'स्टेटिसटिक्स' (सांख्यकी) उपलब्ध हैं । अंग्रेजी में शब्द है 'लुनाटिक' । 'लुनाटिक' का मतलब होता है चांदमारा, 'लुनारा' । हिन्दी में भी पागल के लिए चांदमारा शब्द है । बहुत पुराना शब्द है और 'लुनाटिक' भी कोई तीन हजार साल पुराना शब्द है । कोई तीन हजार साल पहले भी आदमियों को ख्याल था कि चांद पागल के साथ कुछ न कुछ करता है, लेकिन अगर पागल के साथ करता है तो गैर-पागल के साथ नहीं करता होगा ?

आखिर मस्तिष्क की बनावट, आदमी के शरीर के भीतर की संरचना तो एक जैसी है। हां, यह हो सकता है कि पागल पर थोड़ा ज्यादा करता होगा। गैर-पागल पर थोड़ा कम कर सकता होगा। यह मात्रा का भेद होगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि गैर-पागल पर बिल्कुल नहीं करता होगा। अगर ऐसा होगा तब तो कोई पागल ही कभी न हो, क्योंकि सब गैर-पागल ही पागल होते हैं। पहले तो काम गैर-पागल पर ही करना पड़ता होगा चांद को।

प्रोफेसर ब्राउन ने एक अध्ययन किया है। वह खुद ज्योतिष में विश्वास नहीं करते थे—अविश्वासी थे और अपने पिछले लेखों में उन्होंने बहुत मजाक उड़ायी है। लेकिन पीछे उन्होंने खोज-बीन के लिए सिर्फ एक काम शुरू किया। मिलिट्री के बड़े-बड़े जनरल्स की जन्म-कुण्डलियां उन्होंने इकट्ठी कीं—डाक्टर्स की, अलग-अलग प्रोफेशंस की। बड़ी मुश्किल में पड़ गये इकट्ठी करके; क्योंकि पाया कि प्रत्येक प्रोफेशसन के आदमी एक विशेष ग्रह में पैदा होते हैं—एक विशेष नक्षत्र स्थिति में पैदा होते हैं। जैसे जितने भी बड़े प्रसिद्ध जनरल्स हैं, मिलिट्री के सेनापति हैं, योद्धा हैं, उनके जीवन में मंगल का भारी प्रभाव है। वही प्रभाव प्रोफेसर्स की जिन्दगी में बिल्कुल नहीं है। ब्राउन ने अध्ययन किया कोई पचास हजार व्यक्तियों का, पाया कि जो भी सेनापति हैं—उनके जीवन में मंगल का प्रभाव भारी है। आम तौर से जब वे पैदा होते हैं तब मंगल जन्म ले रहा होता है। उनके जन्म की घड़ी मंगल के जन्म की घड़ी होती है। ठीक उससे विपरीत जितने 'पैसिफिस्ट' हैं दुनिया में, जितने शांतिवादी हैं, वह कभी मंगल के जन्म के साथ पैदा नहीं होते। एकाध मामले में यह संयोग हो सकता है, लेकिन लाखों मामले में संयोग नहीं हो सकता। गणितज्ञ एक खास नक्षत्र में पैदा होते हैं; कवि उस नक्षत्र में कभी पैदा नहीं होते हैं। यह कभी एकाध के मामले में संयोग हो सकता है, लेकिन बड़े पैमाने पर संयोग नहीं हो सकता। असल में में कवि के ढंग और गणितज्ञ के ढंग में इतना भेद है कि उनके जन्म के क्षण में भेद होना ही चाहिए। ब्राउन ने कोई दस अलग-अलग व्यवसाय के लोग चुने, जिनके बीच तीव्र फासले हैं; जैसे, कवि है और गणितज्ञ है या युद्धखोर सेनापति है और एक शांतिवादी बर्टेंड रसल है। एक आदमी जो कहता है, विश्व में शांति होना चाहिए और एक आदमी नीत्से जैसा, जो कहता है, जिस दिन युद्ध न होंगे उस दिन दुनिया में कोई अर्थ न रह जायेगा।

इनके बीच बौद्धिक विवाद है सिर्फ या नक्षत्रों का भी विवाद है? इनके बीच बौद्धिक फासले हैं या इनकी जन्म की घड़ी भी हाथ बंटाती है? जितना अध्ययन बढ़ता जाता है उतना ही पता चलता है प्रत्येक आदमी जन्म

के साथ विशेष क्षमताओं की सूचना देता है। ज्योतिष में साधारण जानकार कहते हैं कि वह इसलिए ऐसा करता है; क्योंकि वह विशेष नक्षत्रों की व्यवस्था में पैदा हुआ। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि वह विशेष नक्षत्रों में पैदा होने को उसने चुना। वह जैसा होना चाह सकता है, जो उसके होने की आंतरिक संभावना थी, जो उसके पिछले जन्मों का पूरा का पूरा रूप था, जो उसका संयोजित अर्जित चेतना थी वह इस नक्षत्र में ही पैदा होगी। हर बच्चा, हर आने वाला नया जीवन 'इनसिस्ट' करता है अपनी घड़ी के लिए—अपनी घड़ी में ही पैदा होना चाहता है—अपनी ही घड़ी में गर्भाधान लेना चाहता है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं, 'इंटर डिपेंडेंट' हैं। मैंने आपसे कहा, समुद्र का पानी प्रभावित होता है। सारा जीवन पानी से निर्मित है—पानी के बिना कोई जीवन की संभावना नहीं है। यूनान में पुराने दार्शनिक कहते थे, पानी से ही जीवन है। पुराने भारतीय, चीनी और दूसरी दुनिया की 'माइथोलाजी' भी कहती हैं और आज 'एवोल्यूशन' को मानने वाले, विकास को मानने वाले वैज्ञानिक भी कहते हैं कि जीवन का जन्म पानी से है। शायद पहला जीवन काई है, वह जो पानी पर जम जाती है। वही जीवन का पहला रूप है, फिर आदमी तक का विकास। जो लोग पानी के ऊपर गहन शोध करते हैं वह कहते हैं, पानी सर्वाधिक रहस्यमय तत्व है। और जगत से, अंतरिक्ष से तारों का जो भी प्रभाव आदमी तक पहुंचता है, उसमें 'मीडियम', माध्यम पानी है। आदमी के शरीर के जल को ही प्रभावित करके कोई भी 'रेडिएशन', कोई भी विकिरण मनुष्य में प्रवेश करता है। जल पर बहुत काम हो रहा है। और जल के बहुत से 'मिस्टीरियस', रहस्यमय गुण ख्याल में आ रहे हैं। सर्वाधिक रहस्यमय गुण तो जल का, जो ख्याल में अभी दस वर्षों में वैज्ञानिकों को आया है, वह यह है कि सर्वाधिक संवेदनशीलता जल के पास है—सबसे ज्यादा 'सेंसिटिविटी'। और हमारे जीवन में चारों और से जो भी 'इन्फ्लुएंस' गति करता है भीतर, वह जल को ही कंपित करके गति करता है। हमारा जल ही सबसे पहले प्रभावित होता है। और एक बार हमारा जल प्रभावित हुआ तो फिर हमारा प्रभावित होने से बचना बहुत कठिन हो जायेगा। माँ के पेट में बच्चा जब तैरता है तब भी, आप जानकर हैरान होंगे कि वह ठीक ऐसे ही तैरता है जैसे सागर के जल में। और मां के पेट में भी जिस जल में बच्चा तैरता है, उसमें भी नमक का वही अनुपात होता है, जो सागर के जल में। और मां के शरीर से जो-जो प्रभाव बच्चे तक पहुंचते हैं उनमें कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। यह जानकर आप हैरान होंगे कि मां और उसके पेट में बनने वाले गर्भ का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता—दोनों के बीच में जल है। और

मां से जो भी प्रभाव पहुंचते हैं बच्चे तक, वह जल के ही माध्यम से पहुंचते हैं, सीधा कोई सम्बन्ध नहीं होता। फिर जीवन भर हमारे शरीर में जल का वही काम है जो सागर में काम है।

सागर में बहुत-सी मछलियों का अध्ययन किया गया। ऐसी मछलियां हैं, जो जब सागर का पूर उतार पर होता है, जब सागर उतरता है, तभी सागर के तट पर आकर अण्डे रख जाती हैं। सागर उतर रहा है वापस। मछलियां रेत में आयेंगी सागर की लहरों पर सवार होकर, अण्डे देंगी, सागर की लहरों पर वापस लौट जायेंगी। पन्द्रह दिन में सागर की लहरें फिर उस जगह आयेंगी तब तक अण्डे फूटकर उनके चूजे बाहर आ गये होंगे। आने वाली लहरें वापस उन चूजों को सागर में ले जायेंगी। जिन वैज्ञानिकों ने इन मछलियों का अध्ययन किया है वे बड़े हैरान हुए; क्योंकि मछलियां सदा ही उस समय अण्डे देने आती हैं जब सागर का तूफान उतरता होता है। अगर वह चढ़ते तूफान में अण्डे दे दें तो अण्डे तो तूफान में बह जायेंगे। वह अण्डे तभी देती हैं जब तूफान उतरता होता है, एक 'स्टेप' सागर की लहरें पीछे हटती जाती हैं। वह जहां अण्डे दे देती हैं वहां लहर दुबारा नहीं आती फिर, नहीं तो लहर अण्डे बहा ले जायेंगी। वैज्ञानिक बहुत परेशान रहे हैं कि इन मछलियों को कैसे पता चलता है कि सागर अब उतरेगा—सागर के उतरने की घड़ी आ गयी; क्योंकि जरा-सी भी भूल-चूक समय की और अण्डे तो सब बह जायेंगे। और उन्होंने भूल-चूक कभी नहीं की लाखों साल में; नहीं तो वह खत्म हो गयी होतीं मछलियां। उन्होंने कभी भूल की ही नहीं। पर इन मछलियों के पास क्या उपाय है ? जिनसे ये जान पाती हैं। इनके पास कौन-सी इन्द्रिय है जो इनको बताती है कि अब सागर उतरेगा। लाखों मछलियां एक क्षण में पूरे किनारे पर इकट्ठी हो जायेंगी। इनके पास जरूर कोई संकेत लिपि, इनके पास सूचना का यंत्र होना ही चाहिए। करोड़ों मछलियां दूर-दूर हजारों मील सागर तट पर इकट्ठी होकर अण्डे रख जायेंगी एक खास घड़ी में। जो अध्ययन करते हैं वह कहते हैं कि चांद के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। चांद से इनको जो संवेदनाएं मिलती हैं, मछलियों को उन संवेदनाओं से पता चलता है कि कब उतार पर, कब चढ़ाव पर। चांद से जो उन्हें धक्के मिलते हैं उन्हीं धक्कों के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है कि उनको पता चल जाय। यह भी हो सकता है, कुछ ख्याल था कि सागर की लहरों से कुछ पता चलता होगा। तो वैज्ञानिकों ने इन मछलियों को ऐसी जगह रखा जहां सागर में लहर ही नहीं हैं। झील पर रखा, अंधेरे कमरों पर पानी में रखा। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है—अंधेरे में बन्द हैं

मछलियां, उनको चांद का कोई पता नहीं, आकाश का कोई पता नहीं और जब चांद ठीक जगह पर आया, जब समुद्र की मछलियां जाकर तट पर अण्डे देने लगीं, तब उन मछलियों ने पानी में ही अण्डे दे दिए—उनका पानी में ही अण्डे छोड़ देना; क्योंकि कोई तट नहीं, कोई किनारा नहीं।

तब तो लहरों का कोई सवाल न रहा। अगर कोई कहता हो कि दूसरी मछलियों को देखकर यह दौड़ पैदा हो जाती होगी, तो वह भी सवाल न रहा। अकेली मछलियों को रखकर भी देखा। ठीक जब करोड़ों मछलियाँ सागर के तट पर आयेंगी, इनके दिमाग को सब तरह से गड़बड़ करने की कोशिश की मछलियों के, चौबीस घण्टे अन्धेरे में रखा, ताकि उन्हें पता न चले कि कब सुबह होती है, कब रात होती है। चौबीस घण्टे उजाले में भी रखकर देखा, ताकि उनको पता ही न चले कि कब रात होती है। झूठे चांद की रोशनी पैदा करके देखी कि रोज रोशनी को कम करते जाओ, बढ़ाते जाओ, लेकिन मछलियों को धोखा नहीं दिया जा सका। ठीक चांद जब अपनी जगह पर आया तब मछलियों ने अण्डे दे दिये। जहां भी थीं, वहीं उन्होंने अण्डे दे दिये। हजारों, लाखों पक्षी हर साल यात्रा करते हैं लाखों, हजारों मील। सर्दियां आने वाली हैं, बर्फ पड़ेगी तो बर्फ के इलाके से पक्षी उड़ना शुरू हो जायेंगे, हजारों मील दूर किसी दूसरी जगह वह पड़ाव डालेंगे। वहां तक पहुंचने में भी उन्हें दो महीने लगेंगे, महीना भर लगेगा। अभी बर्फ गिरनी शुरू नहीं हुई, महीने भर बाद गिरेगी। ये पक्षी कैसे हिसाब लगाते हैं कि महीने भर बाद बर्फ गिरेगी, क्योंकि अभी हमारी मौसम बताने वाली जो वेधशालाएं हैं वह भी पक्की खबर नहीं दे पाती हैं। मैंने तो सुना है, कुछ मौसम की खबर देने वाले लोग पहले पूछ जाते हैं सड़कों पर बैठे हुए ज्योतिषियों से कि आज क्या ख्याल है? पानी गिरेगा कि नहीं?

आदमी ने अभी जो व्यवस्था की है वह बचकानी मालूम पड़ती है। पक्षी एक डेढ़ महीने, दो महीने पहले पता करते हैं कि अब बर्फ कब गिरेगी? और हजारों प्रयोग करके देख लिया गया है कि जिस दिन पक्षी उड़ते हैं, हर पक्षी की जाति का निश्चित दिन है। हर वर्ष बदल जाता है वह निश्चित दिन; क्योंकि बर्फ गिरने का कोई ठिकाना नहीं। लेकिन हर पक्षी का तय है कि वह बर्फ गिरने के एक महीने पहले उड़ेगा, तो हर वर्ष वह एक महीने पहले उड़ता है। बर्फ दस दिन बाद गिरे, तो वह दस दिन बाद उड़ता है। बर्फ दस दिन पहले गिरे तो वह दस दिन पहले उड़ता है। यह बर्फ के गिरने का कुछ निश्चय तो है नहीं, यह पक्षी कैसे उड़ जाते हैं महीने

भर पहले पता लगाकर। जापान में एक चिड़िया होती है, जो भूकम्प आने के चौबीस घण्टे पहले गांव छोड़ देती है। साधारण गांव की चिड़िया है। हर गांव में बहुत होती है। भूकम्प आने के चौबीस घण्टे पहले चिड़िया छोड़ देती है गांव। अभी भी वैज्ञानिक दो घण्टे के पहले भूकम्प का पता नहीं लगा पाते। और दो घण्टे पहले भी 'अनसर्टेनटी' होती है, पक्का नहीं होता है। सिर्फ 'प्रोबेबिलिटी' होती है, संभावना होती है कि भूकम्प हो सकता है। लेकिन चौबीस घण्टे पहले जापान में भूकम्प का फौरन पता चल जाता है। जिस गांव से चिड़िया उड़ जाती है उस गांव के लोग समझ जाते हैं कि भाग जाओ, चौबीस घण्टे का समय है। वह चिड़िया हट गयी। गांव में दिखाई नहीं पड़ती। इस चिड़िया को कैसे पता चलता होगा ?

(क्रमशः)

भगवान श्री रजनीश के चरणों में

मृत्यु की इन असीम बाँहों से, हे परमात्मन् !
तू कब छुड़ाने आयेगा ?
जन्म, जीवन, मृत्यु तेरी ही इच्छा है न ?
हे अन्तर्यामी ! तू कब अपने स्व का दर्शन देगा !
तेरे ही सम्मोहन से तू कब छुड़ाएगा प्रभो !
हे परमकृपालु ! तू तो सदा-सर्वत्र है,
फिर हमारी पुकार का कोई उत्तर क्यों नहीं देता ?
हे प्रियतम ! तेरे प्यारों की पुकार कब तुझे परेशान करेगी ?
हे प्रभू ! कब तक हमें तड़पते रखना है ?·····कब तक ??
प्रभू ! कब सुनोगे हमारे प्राणों की पुकार ?
प्रभू ! कब देखोगे हमारे प्राणों की व्यथा ?
प्रभू ! कब तुम्हारा प्यार बहेगा हमारे भीतर ?
हे जीवन के स्रष्टा ! तेरे सृजन में तू खुद कब आएगा ?
हे प्रलय के सागर ! तेरे प्रलय में तू कब डूबेगा ?
हे जीवन के आकाश ! तेरा ओ३म्कार तू कब बनेगा ?
हे अन्तर्यामी ! हे सृजनहार ! हे प्रलयकारी प्रभु !!
कब आओगे ? ··· ····· कब ?? ····· कब ???

— स्वामी अमृत सिद्धांत
८५२, वेस्ट ४६वीं स्ट्रीट, नार्फ़ोल्क वरजीनिया,
२३५०८, यू० एस० ए०

एक और जन्म

--साधु राजनारायण भारती

(राजनारायणसिंह)

'प्यासा कुएं के पास जाता है' अब तक ऐसा ही होता रहा है। किंतु कभी कुछ ऐसा भी हो जाता है, जब कुआं स्वतः प्यासे पर कृपा कर उसके पास पहुंच जाता है, ऐसा क्यों होता है ?

वह तो वही असीम अनुकंपापूर्ण भगवान ही जाने जो सर्वत्र, सर्वशक्तिमान है। मैं यहां उस घटना का वर्णन करूंगा जिससे जीवन में एक नया मोड़ आया और जिसके द्वारा मैं भगवान श्री के सम्पर्क में आया।

मार्च महीने, की बात है। मैं अपने गांव गया हुआ था। एक दिन सुबह जब सोकर उठा तो सिर भारी था और दायें कमर में धीरे-धीरे दर्द हो रहा था। शाम होते-होते मैं भयानक पीड़ा से व्याकुल हो गया। जिसने जो दवा बताई, वह दवा की गई; पर सब व्यर्थ। और मैं दर्द से तड़पता रहा, चिल्लाता रहा।

फिर शाम के समय उल्टी शुरू हुई। पेशाब व टट्टी की अनुभूति बढ़ गई, पर हुई नहीं। और फिर वह लगातार चलती रही। लगातार एक के बाद एक। और जब पेट खाली हो गया, तब प्यास लगनी शुरू हुई। पानी पीता और तुरन्त बाद उल्टी हो जाती। सब घबड़ा गये। भाई दो मील दूर जाकर डाक्टर को सब हाल बताकर दवा लाया। पर वह भी व्यर्थ ही हुआ। सुबह हुई। रोते चिल्लाते डा० बुलाया गया। इंजेक्शन, दवा दी गई; किंतु कुछ परिवर्तन न हुआ। इस तरह कभी ज्यादा और कभी कम। दर्द, उल्टी का क्रम होता रहा। ५–६ दिन इस तरह व्यतीत हुए। उसके बाद एकाएक दर्द ठीक हो गया, किन्तु पूर्णतः स्वस्थ नहीं था। बम्बई आना आवश्यक था अतः घरवालों को समझा-बुझाकर दि० २८–३–७१ को प्रस्थान किया।

बम्बई आने के १५–२० दिन बाद फिर दर्द और उल्टी शुरू हुई। अपने पड़ोस के डा० से इलाज कराया। कभी ठीक हो जाता। कभी फिर दर्द उठता। यही क्रम चलता रहा, मैं भुगतता रहा।

आगे चलकर इस प्रकोप का समय बदल गया और सातवें दिन से होता। इसका भी समय निश्चित हो गया अब प्रकोप हर इतवार की सुबह ४ बजे शुरू हो जाता और सोमवार के प्रातः तक होता। हर आने वाले अगले इतवार की प्रतीक्षा में जैसे मेरा सप्ताह गुजरने लगा। इधर दवा-इलाज भी बन्द हो गया। पैसे की दिक्कत थी ही। काम कहीं करता न था। मेरी यह हालत देखकर मेरे मामा ने काफी जोर दिया दवा कराने पर। पैसे की चिंता समाप्त हो गई और कुछ इधर-उधर के डाक्टरों से इलाज कराया। जिसने जो समझा, समझाया। जो उचित समझा, वह दवा दी। कोई कहता अलसर है, कोई कहता पेट में फोड़ा है, पथरी है। कुछ ने बताया, पेट में कीड़े हैं। और मेरी दिनचर्या कीड़े-मकोड़ों की तरह हो गई।

मनुष्य जब हर तरफ से हार जाता है तब वह भगवान की शरण में जाता है लेकिन यहां उल्टा ही हो गया। परमात्मा बड़े ही कृपालु और करुणामय हैं, वह स्वयं ही सब पर दया करने आ जाते हैं, किसी प्यासे के पास, अपंग दुखी के पास, किसी के माध्यम से पहुंच ही जाते हैं।

भगवान की शरण में मुझे पहुंचना था। वह समय नजदीक आ गया था। इस समय तक तो मुझे कल्पना भी नहीं थी—सुना भी न था कि इस धरती पर, इस पावन-पुनीत भारत में भगवान का अवतरण भी हुआ है, भगवान स्वयं आये हैं। जानना कैसे हो सकता था ? मेरी दुनिया ही जो अलग थी। बहुत हुआ तो कभी महालक्ष्मी-मंदिर में हो आता, अन्यथा वह भी नहीं। धर्म में, भगवान में, आस्था जरूर थी, पर जब दुःख होता था तभी याद कर लेता। और बने बनाये शब्दों को दुहरा लेता, हे भगवान, दया करो ! हे भगवान सहायता करो ! लड्डू चढ़ाऊंगा, पेड़ा चढ़ाऊंगा ! मंदिर में आकर दर्शन करूंगा। ···बस, मात्र इतनी ही मेरी कल्पना थी। बस, यहीं तक मेरी साधना-आराधना थी। और मेरा भगवान भी इतना ही सीमित था।

कुएं में पड़ा मेंढक भी तो अपने सिर को जब उठाता है तो कुए के दायरे भर का ही आसमान देखता है। बस, उसकी दुनिया उतनी ही बड़ी हो जाती है। वह उछलकर बाहर आये तब उसे ज्ञात हो कि यह आसमान अनन्त है। लेकिन उछलकर आ भी नहीं सकता कुएं से बाहर। वह बहुत गहरे में, पतन की गहराई में पड़ा है। बहुत नीचे, अंधेरे में है। वह बाहर आ सकता है, जरूरत होगी माध्यम की। माध्यम तो दिन में कई बार आता है, सुबह से शाम तक, शाम से सुबह तक; माध्यम आता-जाता रहता है। पर मेंढक टर्र-टर्र करता हुआ, कुएं में ही गोल-गोल घूमता रहता है। हिम्मत नहीं, उसमें

आत्मबल नहीं कि किसी की लटकाई गई बाल्टी में कूद जाय। कूद सकता है। जरा-सी हिम्मत करे, तो चला आयेगा बाहर—प्रकाश में, कुए के दायरे से मुक्त। किन्तु वह हिम्मत ही नहीं करता, डरता है बाहर आने में। वह बाल्टी देखकर कोने में दुबक जाता है। वह सीढ़ी वापस चली जाती है। मेंढक खुश हो जाता है टर्र-टर्र करके। किंतु साहस कभी अनायास ही जुट जाता है। मिल जाती है राह अनजाने में ही।

ता० १७-६-७१ को मेरे एक परिचित बन्धु श्री कृष्णदत्त दीक्षित (आदरणीय श्री ब्रह्मदत्त के जेष्ठ भ्राता) मिल गये। वैसे मैं उन्हें बचपन से ही जानता हूं और नाम की जगह 'बड़े भैया' कहता हूं। (आगे 'बड़े भैया' के नाम से ही सम्बोधन करूंगा।) वे मुझे देखकर पूछ बैठे—'कैसे हो ?'

मैं बोला—'ठीक हूं...।' और अपनी तथा बीमारी का सब हाल बताया।

वे बोले—'यहां-वहां की दवा करना व्यर्थ है। चलो बम्बई-अस्पताल।' और वे तुरन्त चलने को भी तैयार हो गये। अस्पताल में भाग्य से डॉ० बी० के० गोयल जी—जो एक उच्च अनुभवशील डाक्टर हैं—मिल गये। उनके सहायकों द्वारा मेरी जांच हुई और निश्चित हुआ कि पथरी (स्टोन) है। दूसरे दिन के लिए मेडिकल और एक्स-रे रखा गया। रास्ते में आते-जाते 'बड़े भाई' परम पूज्य 'भगवान श्री रजनीश' के सम्बन्ध में बताते रहे।

यूं तो मेरे पल्ले उस वक्त कुछ न पड़ा। इस तरह के लेक्चर मैं खूब सुना हूं। कई जगह देव-चर्चा में गया भी हूं। अतः उस वक्त तो मुझे मात्र लेक्चर ही लगा। किंतु वे जो कुछ बताते रहे मैं ध्यान से सुनता रहा। उसका कारण भी था कि मैं यह अनुभव उन्हें नहीं देना चाहता था कि वह जो कुछ कह रहे हैं, उससे मुझे क्या लेना-देना।

मनुष्य का स्वभाव है—वह जो कुछ कहता है वह उसके लिये महत्व-पूर्ण होता है, क्योंकि उसका वह स्वयं का अनुभव रहता है, भले ही श्रोता उसका अर्थ बकवास मात्र ही समझे। कुछ भी रहा हो किंतु प्रत्येक शब्द हृदय की गहराई में उतर रहे थे। हृदय उन सबको अनजाने में ग्रहण कर रहा था। देवी-देवताओं में मेरी आस्था है इसलिये नकारात्मक भावना नहीं थी।

तारदेव में बड़े भाई जाते-जाते बोले—'शाम को घर पर आ जाना, ७।। बजे साधना होगी, देखना।' मैंने सोचा—यह साधना कौन-सी बला है ? चलो देख लेंगे।

संध्या को उनके घर समय से पूर्व ही पहुंच गया।

वहां जो कुछ देखा, उसका भी हाल सुनें।

देखा, एक काष्ठ का सुन्दर-सा मंदिर दीवाल पर प्रतिष्ठापित है। सोचा, कोई नई बात नहीं, एक हिंदू और वह भी एक उच्च ब्राह्मण के घर। यह कुछ नई बात नहीं, यह तो होता ही है। होगी इसमें सालिगराम की मूर्ति या कोई कृष्ण-राम की प्रतिमा। मंदिर में और ऊपर दीवाल पर किसी दाढ़ी-वाले महा दिव्य और भव्य पुरुष के चित्र थे।

यहां उल्लेख कर दूं कि अब तक मैं 'श्री' के रूप (चेहरे) से अनभिज्ञ था। पर फिर भी वह मात्र एक फोटो ही था। देखा और नजर दूसरी तरफ कर ली। बातें इधर-उधर की होती रहीं, किन्तु 'बड़े भाई ने अभी तक उन प्रतिमाओं के बारे में कुछ न बताया था।

मेरी नजरें कई बार उन चित्रों की तरफ उठ-उठ जातीं। मुझे हर बार कुछ नया-सा लगता, उसमें कुछ विचित्र-सा परिवर्तन हुआ-सा लगता।

किसी के घर में बैठकर इधर-उधर ताक-झांक करना, हर वक्त देखना जरा भली बात नहीं है। अतः चोर नजरों से ही इधर-उधर देखता, लेकिन चित्रों पर नजर जाते ही आंखें कुछ देर के लिये वहीं चिपक जातीं।

कई बार मन हुआ पूछूं यह महानुभाव कौन हैं, जिनका चित्र आप लोग फूलमाला से सजाये हैं। किन्तु हर बात पूछना, हर एक का कोई अधिकार नहीं। अतः इस सम्बन्ध में मौन रहा। मैंने सोचा—अरे भाई—तुम कई मित्रों के पहचानवालों के घर गये हो वहां भी तमाम चित्रों को फूलमाला में देखा है, कभी पूछा है—'ये कौन हैं ?' और अगर पूछा भी है तो जवाब पाया है—मेरे पिता हैं, मां हैं, बड़े भाई हैं और तरह-तरह के सम्बन्धी। ऐसा ही कोई यहां भी होगा सगा-संबंधी ! मुझे क्या करना है !

फिर सवा आठ बजे रात के साधना शुरू हुई। साधना करने वालों में थे, बड़े भाई, उनकी पत्नी और बड़े भाई के एक मित्र, श्री शिवबहादुर चौहान, और कुछ बच्चे। काष्ठ-मंदिर के पास जाकर बारी-बारी से लोग सिर टेकने लगे। मैं चुपचाप बैठा देख रहा था। लगा कि यह चित्र कुछ अलग है। यह कोई साधारण संबंधी नहीं !

८-२० बजे साधना शुरू हुई। एक दस वर्षीय बालिका, जिसे 'शकुन' कहते हैं, ध्यान कराने बैठी। धीरे से उसके ओंठ खुले—

'दोनों हाथ जोड़ लें। संकल्प करें कि ध्यान में अपनी पूरी शक्ति लगा देंगे।' तीन बार ऐसा कहकर वह सुझाव देने लगी—बेहिचक, बेझिझक—'अब गहरी सांस लेना शुरू करें।' लोग सांस जोरों से ले रहे थे।

'और जोर से।' बच्ची बिना रुके बोले जा रही थी।

'सांस ही सांस रह जाय। सांस के सिवा कुछ भी न बचे—कुछ न शेष रहे।'

मुझे लगा बच्ची नहीं, कोई अज्ञात शक्ति बोल रही है। कहां नन्हीं-सी लड़की कहां एक ओजपूर्ण वाणी !

'जो पीछे हैं वे आगे हो जायं। कोई रुके नहीं।'

पूरा कमरा हिल रहा था। सचमुच वहां सांस के सिवाय कुछ भी शेष न था। इस तरह १० मिनट हो गये।

प्रथम चरण पूरा हुआ, अब द्वितीय चरण में जाना था। इस तरह से साधना के चार चरण पूरे हुए। दस मिनट का शांतिमय समय बीता। बच्ची फिर बोली—

'हमारी आज की ध्यान की बैठक पूर्ण हुई। अब दोनों हाथ जोड़ लें। प्रभु के चरणों में गिर जायं। फेंक दें अपने आपको उसी के चरणों में। चारों तरफ उसी के ही चरण हैं।'

मैं वह सब कुछ मुंहबाये देखता रहा। मैं धीरे से उठा। मुझसे कोई न बोला, क्योंकि सब मौन में थे। मैं चला आया अपने निवास को सोचता हुआ कि—

यह भी विचित्र पूजा है। अजीब साधना है। कूदना, उछलना, एक्सरसाइज़ करना। क्या यह अखाड़ेबाजी ही भगवान-भजन है ? क्या पागलपन है, यह सब ! मुझे लगा—अब बड़े-बूढ़े एकदम अपना मस्तिष्क गंवा बैठे हैं।

दूसरे दिन अस्पताल गया। वापस लौटने पर पान की दुकान पर 'बड़े-भैया' मिल गये। बात-चीत के दौरान उन्होंने कहा—'तू भी क्या दवा-ववा के चक्कर में पड़ा है। साधना कर, भगवान की दया से सब ठीक हो जायेगा।'

मुझे लगा अब 'बड़े-भैया' मेरा उपहास कर रहे हैं। मेरी हालत तो उस समय ऐसी थी कि कोई मुंह में दवा डाल दे। और आप बता रहे थे कि साधना करो। चिन्ता, दुःख-दर्द से, मनोदशा मेरी दयनीय बन गई थी। यह उपहास कुछ अच्छा न लगा। मान्य थे वे बड़े भाई, अतः प्रतिकार भी न कर सका। वे बहुत कुछ बता गये। मौन सुनता रहा। पर विचार में, एक्स-रे-दवा-आपरेशन आते-जाते रहे। मौत के चिन्तन के सिवाय और कुछ मस्तिष्क सोच ही नहीं सकता था।

संध्या को फिर निमंत्रण मिला। साधना देखने का। उस दिन भी गया। वही सब कुछ देखा।

ता० २०-९-१९७१ को सुबह प्रातः चर्या से निवृत्त हुआ तो सहसा विचार आया कि जरा दो चार सांस जोर-जोर से मैं भी लेकर देखूं। आंखें मूंदी और सांस लेना शुरू किया। शायद दो मिनट किया होऊंगा कि लगा सिर पर भारी बोझ रख दिया गया है। मैं डरकर शान्त बैठ गया। आंखें मूंदे ही रहा। एकाएक मुझे दिखायी पड़ा भीतर एक नन्हा-सा प्रकाश-बिन्दु। वह एक तरफ से दूसरी तरफ तेजी से जाता और लौट आता। कुछ देर बाद वह बिन्दु बढ़ना शुरू हो गया और धीरे-धीरे बढ़कर एक प्रकाश-पुंज बन गया। विचित्र प्रकाश-पुंज। सूर्य-सा प्रकाश था उसमें। मैं डर गया। आंखें खोल दीं। कुछ ठीक होने पर फिर आंखें मूंदी पर अब कुछ न दिखा। अब वहां कुछ न था।

उस दिन मैं पूरे दिन खूब प्रसन्न रहा। सिर्फ उसी प्रकाश की याद आती रही। उस दिन संकल्प किया आज संध्या साधना में उतरूंगा। बड़े-भैया से बातें हुईं। इस घटना का उल्लेख उनसे किया। वे बड़े प्रभावित हुए, बोले—

'हां, आज तू साधना में जरूर आ।'

निश्चित समय पर मैं भी साधना में शरीक हो गया। सोचा, जब नन्हें बच्चे कर सकते हैं तो मैं भी कर पाऊंगा।

रात्रि के ठीक आठ-बीस पर हम सब तैयार हो पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। रोज की तरह शकुन सुझाव देने लगी।

सब लोग गहरी सांस लेने लगे।

मैं भी गहरी सांस ले रहा था पर मैं बार-बार थक जाता, रुक जाता, किंतु मेरे रुकते ही शकुन जैसे चीख उठती।

'रुकें नहीं! जो पिछड़ गये हों वे आगे हो जायं।'

मैं जोर लगा देता। किन्तु फिर-फिर पिछड़ता ही जा रहा था। श्री ब्रह्मदत्त वहीं थे, अचानक वे बोलने लगे—

'श्वास लें, श्वास लें, पूरी शक्ति लगा दें!' इसके बाद मेरा सिर चकरा गया। फिर मुझे कुछ याद न रहा। बाद में मौन समाप्ति पर मुझे बताया गया कि 'तुम तो बहुत ज्यादा पी गये थे!'

मैं बोला—'भाई मैं तो कुछ नहीं जानता। मैं तो एक ही जगह था। शायद थककर बैठ गया होऊं? नींद जरूर लग गई थी।'

ब्रह्मदत्त बोले—'ठीक है। साधना छोड़नी नहीं है, रोज करते रहना।'

दूसरे दिन ता० २१-९-७१ को सुबह, बायें कमर में तेज दर्द हो रहा था। सारी देह में पीड़ा फैल गयी थी। गरदन सुबह उठते ही लगा कि एक तरफ ऐंठ गयी है। हाथ पैर भारी हो गये थे।

प्रातः कर्म में गया तो पेशाब ठीक से न हुई। वापस आया और लेट गया। मुझे लगा, दर्द अपने पूर्व जगह पर नहीं हो रहा है बल्कि धीरे-धीरे स्थान बदल कर दर्द हो रहा है। घबड़ाहट बढ़ गई। परेशानी में दो-तीन ग्लास पानी पी गया। पेशाब जल्दी-जल्दी लगनी शुरू हुई और क्रमशः दर्द कम होता गया। परंतु यह दर्द कुछ देर बाद स्थान बदलता गया। लगभग ९ बजे प्रातः मुझे निजी-अंग में दर्द महसूस हुआ। जैसे सुइयाँ चुभा दी गई हों। पेशाब करने गया तो थोड़ा-सी हुई परंतु कष्ट से। बाद में दर्द कुछ और नीचे होने लगा। नहाने बैठा, थोड़ा बदन भिगोया था कि जोर से लघुशंका महसूस हुई। पेशाब आई और रुक गयी। एक जोर का दर्द उठा—तीखा दर्द—और एक झटके के साथ पेशाब हो गया और कोई वस्तु उसके साथ बाहर आ गई। बड़ा आराम-सा लगा। कुछ देर बाद अपने को मैंने स्वस्थ अनुभव किया। उसी दिन मेडिकल-रिपोर्ट लेने बम्बई अस्पताल गया। वहां से एक्स-रे चित्र लिया। डाक्टर के पास गया। वह टुकड़ा दिखाया। कई डा० वहां थे। उन्होंने देखा और बताया यह स्टोन है। एक्स-रे फोटो से मिलाया गया। डा० ने कहा—'यह मार्क किये गये स्थान से मिलता-जुलता है।' उन लोगों ने पूछा—'तुमने कोई दवा की थी?' मैं बोला—'नहीं, ऐसे ही यह निकल गया। साधना के बारे में उन्हें कुछ न बताया। डाक्टर ने राय दी फिर एक्स-रे करा लो तो ज्ञात हो जाय कि यह वही स्थान से आया है कि कुछ और है?

बाद में फिर ता० २४-९-७१ को पांच एक्स-रे मेरे लिये गये। एक्स-रे रिपोर्ट में 'सब कुछ ठीक है' आया? डा० लोग मुझे हंसते हुए देखते रहे। बोले—'तुम तो अजीब भाग्यशाली हो जिसे हम लोग बिना दवा दिये ही वापस कर रहे हैं।'

डा० से मैंने बड़ी विनती की—'कृपया कुछ तो दवा लिखें।' डा० बोले, 'मैं असमर्थ हूं, बिना रोग के हम कोई दवा नहीं लिख सकते। आप कहें तो विटामिन की गोलियां लिख दूं?'

अब में क्या कहता। वापस एक्स-रे की सात प्रतियां बगल में दबाये लौट पड़ा।

कितना बड़ा आश्चर्य है!

भगवान के ध्यान में, योग में, साधना में·····इतना बड़ा बल!

यह भगवान की कृपा है। जो मुझे इस कष्ट से अनायास ही छुटकारा दिला दिया। भेज दिया 'बड़े-भैया' को मेरे पास मेरा उद्धार करने।

तब से मैं प्रतिदिन नियमपूर्वक साधना में सम्मिलित होता हूं। अब तो कोई कष्ट नहीं है।

दि० १२–१०–७१ को बड़े भाई व उनकी पत्नी संन्यास-ग्रहण के लिये 'भगवान श्री' के पास जा रहे थे। मैंने 'श्री' के दर्शन का अच्छा सुअवसर समझा और उनके साथ हो लिया।

रास्ते में भाईजी ने पूछा—'क्या तुम्हारी भी इच्छा संन्यास लेने की है ?' मैं बोला—'मेरा तो कुछ ऐसा विचार नहीं है। मैं 'श्री' के दर्शन को चल रहा हूं। हां, कोई घटना घट जाय तो नहीं कह सकता।'

हम 'श्री' के समक्ष पहुंचे। आनन्दमय परमात्मा बैठे थे अपने आसन पर। देखते ही बोले—'तुम सब आ गये! ...आओ।'

उस दिव्य करुणामूर्ति के दोनों विशालबाहु हमारी तरफ उठ गये।

प्रसन्नता, खुशी, आनंद का स्रोत वहां बह चला। भगवान मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

भाईजी व उनकी पत्नी के संन्यास की इच्छा भगवान से प्रगट की गई। उन्होंने मा योग लक्ष्मी से दो माला के लिये कहा।

भगवान मेरी तरफ देखकर मुस्करा पड़े। इतने में एकाएक मैं न जाने कैसे भगवान से कह पड़ा—'भगवन् मैं भी।'

भगवान श्री ने मां योग लक्ष्मी से एक और माला लाने के लिए कहा।

और मेरे भी गले में भगवान ने अपने हाथ से माला पहना दी। मुझे नया जन्म दे दिया ! नया नाम करण हुआ—'साधु राजनारायण भारती।'

मैं आनंदित हो उठा। रोम-रोम पुलकित हो गया। हृदय प्रसन्नता और खुशी से भर गया।

अब तो साधना है। संन्यास है। एक विचित्र आनन्द है।

वह आनन्द जो एक साधक ही, एक संन्यासी ही समझ सकता है।

अन्त में उस कृपामय प्रभु को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूं।

सदानन्द डेरी,
४१० आर्थर रोड, तारदेव,
बम्बई–३४

"ज्ञान मिथ्या है, यदि वह विनम्र नहीं। क्योंकि विनम्रता के अभाव में ज्ञान का अविर्भाव ही नहीं होता। ज्ञान के साथ अहंकार, इस बात की घोषणा है कि ऐसा ज्ञान उधार है।"

जन्म-कुण्डली पर एक विशद विवेचन

प्रतिभावान आध्यात्मिक व्यक्तित्व : आचार्य श्री रजनीश जी

—पं० शरद शर्मा

अनु० : स्वामी कृष्ण कबीर, बंबई

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व धारण किए हुए आचार्य रजनीश भारत के बुद्धिमान वर्ग में काफी प्रख्यात हैं। और सारे देश में उनका प्रशंसक वर्ग भी काफी बड़ा है। "समाज को सतत क्रांति की जरूरत है और धर्म की नींव मूलभूत रूप से बदलनी चाहिए"—ऐसा वायुमण्डल खड़ा करने वाले आचार्य रजनीश, भगवान श्रीकृष्ण के संपूर्ण प्रशंसक हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्र के व्यक्तित्व में उनको परम स्वातंत्र्य के दर्शन होते हैं। आधुनिक समाज के ऐसे महान् उपदेशक आचार्य रजनीश जी की कुंडली की चर्चा हम इस अंक में करेंगे। शायद पहली बार ही आचार्य श्री की कुंडली की जाहिर चर्चा इस स्थान पर होती होगी, ऐसी हमारी धारणा है।

—:: जन्माङ्गम् ::—

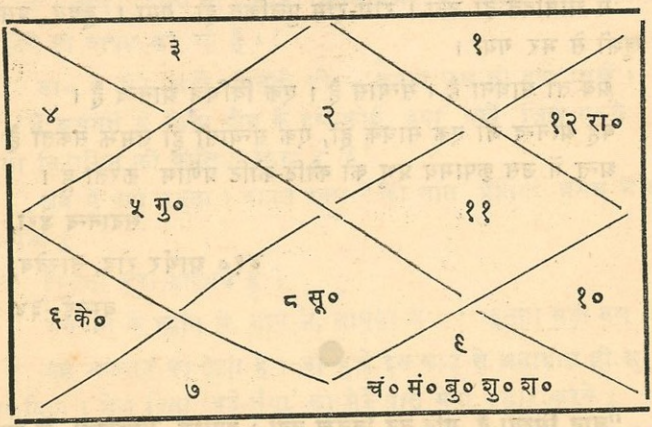

वृषभ लग्न उदित आचार्य श्री की कुंडली में, सुखस्थान में गुरु, पंचम में केतु, सप्तम में सूर्य, अष्टम में शुक्र-शनि-चंद्र-बुध-मंगल और लाभ में राहु

स्थित है। लग्नेश-धर्मेश और लग्नेश-पंचमेश का संयोग दर्शाती उनकी कुंडली में, अष्टम में रहे पांच ग्रह अद्‌भुत योग खड़ा करते हैं और आध्यात्मिकता के महान् कारक गुरु से भी अष्टम स्थान रक्षित है। जबकि दूसरे अनेक सुयोगों का समन्वय दर्शाती उनकी कुंडली उनके जीवन और कार्य का हमें सचोट ख्याल देती है।

लग्नेश-धर्मेश संयोग :

मोक्ष मार्ग के पिपासुओं की कुंडली में हमें बलवान गुरु के दर्शन होते हैं और गुरु का धर्मस्थान या धर्मेश के साथ का संबंध मनुष्य में मोक्ष की तीव्र इच्छा पैदा करता है। अगर इसके साथ कुंडली में लग्नेश-धर्मेश का संबंध हुआ तो ऐसे मनुष्य को धार्मिक क्षेत्र में आगे आते देर नहीं लगती।

आचार्य रजनीश जी की कंडली में, धर्मेश शनि और अष्टमेष गुरु का दृष्टि योग देखने को मिलता है और धर्मेश-लग्नेश संयोग भी उनकी कुंडली में दिखाई पड़ता है। आध्यात्मिकता के प्रबल कारक अष्टमेष गुरु से उनका अष्टम स्थान रक्षित है। इतने ही योग उनको धार्मिक क्षेत्र में अग्रस्थान दिलाने के लिए काफी हैं। देवता, धर्मात्मा और संतपुरुषों की कुंडली में निश्चित ही देखने को मिलते लग्नेश-धर्मेश संबंध के बारे में कुछ उदाहरण देखें।

केन्द्रित ग्रहों की सृजनात्मक शक्ति दर्शाती भगवान रामचन्द्र जी की कुंडली में, लग्न में हुए लग्नेश-धर्मेश संयोग देखने को मिलता है। जबकि कर्म में विराजित पांच ग्रह युक्त भगवान बुद्धदेव की कुंडली में भी हमें लग्नेश-धर्मेश दृष्टियोग के दर्शन होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण, भगवान महावीर, गुरु नानक और आर्य शंकराचार्य की कुंडली भी इस संदर्भ में कैसे भूल सकते हैं! अनेक सुयोगों से युक्त इन महापुरुषों की कुंडली में भी हमें लग्नेश-धर्मेश संबंध देखने को मिलता है। जबकि परम योगी श्री अरविन्द तथा रामानुजाचार्य, महात्मा गांधी, भगवान नामदेव, गोस्वामी तुलसीदास जी और स्वामी विवेकानन्द जैसे अनेक संतपुरुषों की कुंडली में हमें इस योग की प्रबलता के दर्शन होते हैं। इस तरह, धार्मिक क्षेत्र में लग्नेश-धर्मेश संबंध अत्यन्त आवश्यक है।

प्रबल ज्ञानयोग :

पंचम स्थान, विद्या और बुद्धि का कारक स्थान है। जबकि लग्नस्थान मनुष्य के मन, प्रभाव और व्यक्तित्व का उद्‌गम स्थान है। इसीलिए विद्याक्षेत्र में अग्रस्थान पर विराजमान या बुद्धिशाली व्यक्तित्व धारण किए हुए ज्ञानी पुरुषों की कुंडली में हमें लग्नेश-पंचमेश संबंध अवश्य देखने को मिलता है।

लग्नेश-पंचमेश संबंध के साथ अगर विद्या के कारक गुरु और बुद्धि के कारक बुध का भी पंचम स्थान या पंचमेश के साथ संबंध हुआ तो ऐसे मनुष्य को सरस्वती की उपासना द्वारा साहित्य क्षेत्र में कीर्ति के शिखर पर पहुंचने में देर नहीं लगती। अनेक सुयोगों से युक्त आचार्य रजनीश जी की कुंडली में हमें प्रबल ज्ञान योग के दर्शन होते हैं।

आचार्य रजनीश जी की कुंडली में पंचमेश-लग्नेश संयोग हुआ है। जबकि बुध के साथ गुरु का दृष्टियोग भी उनकी कुंडली में दिखाई देता है। उनकी राशि कुंडली में भी पंचमेश-लग्नेश, दृष्टियोग, पंचमेश मंगल का बुध के साथ संयोग तथा गुरु से दृष्टि युक्त पंचम और पंचमेश, उनके प्रबल ज्ञानयोग और बुद्धिशाली व्यक्तित्व हमें सचोट ख्याल देते हैं। पंचमेश-लग्नेश की कारकता के बारे में कुछ उदाहरण देखें।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की कुंडली में लग्नेश-पंचमेश का दृष्टियोग और लग्नेश गुरु पंचम में देखने को मिलता है, जबकि महान् तत्वचिंतक डा० राधाकृष्णन् की कुंडली में भी लग्नेश-पंचमेश दृष्टियोग और लग्न में उच्च राशि में विराजित बुध के दर्शन हमें होते हैं। कवि नर्मद की कुंडली में भी लग्नेश-पंचमेश दृष्टियोग और पंचमेश गुरु की दृष्टि से युक्त बुध और पंचम-स्थान दिखाई देते हैं। उमाशंकर जोशी, सरोजिनी नायडू और महर्षि कर्वे की कुंडली में भी हमें यह योग देखने को मिलता है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। ऐसे, विद्याक्षेत्र में लग्नेश-पंचमेश संबंध और बुध-गुरु की कारकता अनिवार्य है।

सुखस्थान में गुरु :

जन्म कुंडली में चौथा स्थान मनुष्य का हृदय है तथा सुख और मोक्ष का वह उद्गमस्थान है। इस स्थान में रहे ग्रह और उनके स्वामी के हिसाब से मनुष्य के स्वभाव और सुख का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस स्थान में रहे शुभ ग्रह मनुष्य को प्रामाणिक सत्यवादी और शुद्ध अंतःकरण वाला बनाते हैं, जबकि इस स्थान में रहे पाप ग्रह मनुष्य को लोभी और पापी बनाते हैं। लेकिन इस स्थान में अशुभ ग्रहों की दृष्टि से रहित विराजमान गुरु मनुष्य को व्यवहार और परमार्थ सिद्ध कर देने के लिए कारक बनता है।

आचार्य रजनीश जी की कुंडली में गुरु सुख स्थान में रहा हुआ है और सुखस्थान अशुभ ग्रहों से दूषित नहीं है जबकि अष्टमेश गुरु से दृष्टियुक्त होते अष्टम, कर्म और व्ययस्थान भी बहुत सूचक हैं। इन योगों ने उनके "जीवन घडतर" में प्रमुख हिस्से का काम किया है और वे महान् कर्मयोग द्वारा

आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रयाण करने को प्रेषित हुए । जबकि उनका आधुनिक सुख-शांतियुक्त जीवन भी इस योग और वृषभ लग्न की कारकता का ही आभारी कहा जा सकता है ।

अद्‌भुत अष्टमस्थान :

आचार्य श्री की कुंडली में पांच ग्रह अष्टम में विराजमान होते ही अद्‌भुत योग खड़ा होता है । इन ग्रहों के समन्वय से अद्‌भुत सुयोगों में लग्नेश-भाग्येश, कर्मेश-भाग्येश और लग्नेश-धनेश, सप्तमेश-कर्मेश जैसे अगत्य के योगों का समावेश हो सकता है । मोक्ष के महान् कारक अष्टमेष गुरु से दृष्टियुक्त मोक्षस्थान में विराजित इन पांच ग्रहों ने तो उनके लिए अत्यन्त भव्य ऐसा आध्यात्मिक योग भी किया है । ऐसे ये अद्‌भुत अष्टमस्थान की कारकता उनको धार्मिक क्षेत्र में कीर्ति के उच्च शिखर पर पहुंचने में भाग्यशाली बना-येगी और अन्त में आध्यात्मिक तत्वज्ञान से समर ऐसी उनकी मृत्यु भी मोक्षमय बनके रहेगी । प्रखर तत्वज्ञानी महान् योगी एवं बेजोड़ वक्ता स्वामी रामतीर्थ की कुंडली में भी ये चार ग्रह अष्टम में रहे हुए थे और धर्मेश मंगल भी गुरु की राशि में ही विराजमान था । स्वामी रामतीर्थ ने भी अमरीका में अपने अद्‌भुत व्याख्यानों से भारत का नाम रोशन किया था और वे भी शांतिमय जल-समाधि लेकर निर्वाण पाने में भाग्यशाली हुए थे ।

प्रारब्ध-पुरुषार्थ का समन्वय :

ज्योतिषशास्त्र में कर्म स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है । इस स्थान से संबंधित बलवान ग्रह मनुष्य को उन्नतिशील बनाते हैं । जबकि प्रारब्ध और पुरुषार्थ का सबल समन्वय मनुष्य को अपनी कार्यदक्षता से कुलदीपक बनाने में सहयोगी साबित होते हैं । आचार्य रजनीश जी की कुंडली में प्रारब्ध और पुरुषार्थ मिश्रित करते कर्मेश और भाग्येश शनि से कर्मस्थान दृष्टियुक्त है और कर्मेश तथा कर्मस्थान गुरु की दृष्टि से भी रक्षित है । इसके साथ देखने को मिलता केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी का समन्वय भी उनकी प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा के बारे में भूल नहीं सकते ।

महापनोति योग :

आपकी कुंडली में तूफान का सृजन करने वाला शनि-चंद्र महापनोति योग भी देखने को मिलता है । इसके साथ अष्टम में मंगल का अस्तित्व भी उनकी तबियत के बारे में खूब सूचक है । ये योग उनके जीवन में तूफान का सृजन करेंगे और उनकी तबियत में भी अक्सर गड़बड़ करने के लिए कारक बनेंगे । लेकिन प्राणरक्षक अष्टमेष गुरु से सुरक्षित अष्टमस्थान और अष्टम में

विराजित आयुष्यवर्धक शनि उनको ठीक-ठीक आयुष्य प्रदान करेगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

आचार्य श्री की कुंडली में सप्तमेश-दशमेश और लग्नेश-दशमेश का संबंध और दशम स्थान के साथ शनि का और दशमेश शनि के साथ मंगल का संबंध भी विचारणीय है। अनेक सफल राजपुरुषों की कुडली में हमें उपयुक्त योग देखने को मिलते हैं। इसलिए ये योग श्री रजनीश को भी शायद राजकीय क्षेत्र में अगत्य का अनुदान देने के लिए खीचेंगे ऐसी शंका हो सकती है। लेकिन उनकी कुंडली में आध्यात्मिकता, योग, दर्शन और मोक्ष के अद्‌भुत योगों की प्राधान्यता उनको राजकीय क्षेत्र में खिचे जाने में असफल बनाएगी और वे राजकीय प्रश्नों की तलस्पर्शी समीक्षा करके संतोष मानेंगे।

सिद्धिदायक गुरु-शनि :

वृषभ लग्न में अत्यन्त योगकारक धर्मेश शनि, आचार्य श्री की कुंडली में अष्टम में विराजमान हैं, लेकिन गुरु से दृष्टियुक्त होते वह शुभ फलदायी बना है। शनि ईश्वर के द्वार खोलने वाला महान् द्वारपाल है और इसीलिए संत पुरुष व धर्मात्माओं की कुंडली में हमें शनि की प्रबलता के दर्शन होते हैं।

आचार्य रजनीश जी की कुंडली में धर्मेश शनि और अष्टमेश गुरु की कारकता के बावजूद लग्नेश-धर्मेश का गुरु की राशि में और अष्टम स्थान में समन्वय भी बहुत अगत्य का है। धार्मिकता के प्रबल योग युक्त कुंडली में अगर लग्नेश भी अष्टम स्थान में रहा हो तो ऐसे मनुष्य को आध्यात्मिक और गूढ़ शास्त्रों में पारंगत होते देर नहीं लगती। आचार्य श्री की कुंडली में देखने को मिलते उपयुक्त योग उन्हें गूढ़ शास्त्रों के भी महाज्ञानी बनायेंगे और वे ज्ञान-योग द्वारा आध्यात्मिक क्षेत्र में अमूल्य अनुदान देने में सफल होंगे।

आचार्य श्री रजनीश की चलित कुंडली में गुरु कर्क राशि में आके वह अपनी उच्च राशि के अमूल्य गुण भी उनमें महत् अंश प्रदान करने के लिए कारक बना है। इस तरह, गुरु-शनि के समन्वय युक्त अनेक योग दर्शाती आचार्य श्री की कुंडली के सिद्धिदायक ग्रह गुरु-शनि हैं यह आसानी से कहा जा सकता है। संक्षेप में आचार्य रजनीश की कुंडली में देखने को मिलते अद्‌भुत योग उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति दिलायेंगे और वे धार्मिक क्षेत्र में चिरंजीव नाम प्राप्त करेंगे।

—"धर्म संदेश" से साभार

नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय के बढ़ते चरण

(भगवान श्री रजनीश के दिव्य संदेश को जन-मानस तक पहुंचाने हेतु एक प्रतिभावान् संन्यासियों की संकीर्त्तन मंडली देश और विदेश के अंचलों में भ्रमण कर रही है। प्रस्तुत है उनकी सुवासित सुगंध जो अपने देश में उठ रही है।)

हैदराबाद में :

श्री शंकरदेव जी (एम० पी०) बम्बई गये थे। भगवान श्री के निवास स्थान वुडलेंड पर पहुंचे और भगवान श्री की अमृतवाणी का हैदराबाद में प्रचार करने संन्यासियों को आमंत्रण देकर आये थे।

मा योग प्रेम और स्वामी कृष्ण सरस्वती जी ८-९-७१ को हैदराबाद आये और सर्वोदय आश्रम शांति-केन्द्र में ठहर गये और हैदराबाद में रजनीश के प्रेमियों को ढूंढ़ने निकले। वहां रजनीश जी के संन्यासियों का आगमन सुनकर कुछ मित्र उनको ढूंढ़ने निकले। खैर ! ता० १०-९-७१ को कुछ मित्रों से मिलन हो गया।

मानव सेवा संघ की ओर से भगवान श्री की विचारधारा के प्रचार हेतु एक सप्ताह ११-९-७१ से १८-९-७१ तक कार्यक्रम आयोजित किया गया था। सुबह का ध्यान प्रयोग चलता था और 'प्रभु-कृपा-चिकित्सा' के दो क्लासिस लिये जाते थे। रात को भजन और आचार्य श्री के प्रवचन का टेप सुनाया जाता था। ता० २२-९-७१ को स्वामी कृष्ण सरस्वती और मा योग प्रेम के समक्ष हैदराबाद में जीवन जागृति केन्द्र स्थापित किया गया। उसके अध्यक्ष श्री अमृतलाल एवं उपाध्यक्ष श्री रामलू जी और मंत्री श्री टी० किशनसिंह जी नियुक्त किये गये। ये दो संन्यासी साधक आबू साधना शिविर में सम्मिलित होने २२-९-७१ को बम्बई चले गये।

फिर भगवान श्री ने मा योग प्रेम, मा आनंद मधु, मा योग वीणा, स्वामी चैतन्य भारती, स्वामी वैराग्य अमृत, स्वामी मंगल तीर्थ और स्वामी निष्काम भारती को हैदराबाद भेज दिया। जीवन जागृति केन्द्र की ओर से ११-१०-७१ से १८-१०-७१ तक इस प्रकार कार्यक्रम रहा :—

सुबह : ७–३० से ८–३० तक ध्यान।
शाम : ५–०० से ६–०० नगर संकीर्तन।
रात्रि : ८–०० से १०–०० भजन एवं प्रवचन।

रोज सुबह स्वामी चैतन्य भारती और स्वामी वैराग्य अमृत ध्यान प्रकिया कराते थे। सायंकाल संन्यासियों की कीर्तन टोली के साथ मानव सेवा संघ भजन मंडली और सौजन्य सेवा समिति की भजन मंडली सम्मिलित होकर पूरे नगर में धूम मचा दी। संन्यासियों का कीर्तन और नृत्य देखकर सब हैरान रहे। यहां तक कि यहां के सी० आई० डी० केन्द्र के कार्यालय में आकर पूछताछ कर गये। शाम को नगर के विभिन्न स्थानों पर मा आनंद मधु और स्वामी चैतन्य भारती के प्रवचन हुए अनेक पाठशालाओं में विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच भगवान श्री की विचारधारा और ध्यान विद्या बताई गई। इसके अलावा नगर के कुछ मुख्य व्यक्तियों से रजनीश के बारे में चर्चा की गई।

भगवान श्री रजनीश ने १८–१०–७१ को जीवन जागृति केन्द्र हैदराबाद को पत्र द्वारा ये संदेश भेजा—

मेरे प्रिय,

प्रेम। मधु से आप सबकी आंतरिक खबरें जानकर अति आनंदित हूं। प्रभु के काम में डूब जाना ही प्रभु को पाने की साधना है।

रजनीश के प्रणाम

१८-१०-७१

अब तक हैदराबाद में भगवान श्री की नव-संन्यास धारणा के अनुसार तेरह लोग संन्यासी बने हैं।

अब मा योग प्रेम हैदराबाद में ही ठहरी हुई हैं। यहां ऐसी भूमिका तैयार कर रहे हैं, जब भगवान श्री हैदराबाद आकर सत्य के बीज डालेंगे, तो सबके सब अंकुरित हो सकें—कोई बीज बेकार न जाये। भगवान श्री हैदराबाद १९७२ में आयेंगे। जीवन जागृति केन्द्र हैदराबाद की ओर से मा योग प्रेम के नेतृत्व में ये कार्यक्रम चल रहा है।

यहां अब ध्यान के तीन सेंटर चल रहे हैं। (१) पब्लिक गार्डन में (२) दारूशिफा पोस्ट आफिस में (३) सौजन्य सेवा समिति चंचलगूड़ा में।

कभी-कभी दूर प्रशांत स्थानों में सब मिलकर सामूहिक ध्यान का भी आयोजन होगा। सप्ताह में एक बार नगर संकीर्तन करते हैं। प्रतिदिन केन्द्र के आफिस चूड़ीबाजार में रात ८ से ९ तक भगवान श्री का टेप सुनाया जाता और संस्थाओं में, परिवारों में भी जाकर टेप सुनाते हैं। रजनीश जी के

साहित्य की लायब्रेरी केन्द्र में चल रही है और साहित्य का विक्रय भी होता है। केन्द्र के अन्य संचालक—

(१) ध्यान के प्रमुख श्री डी० श्री रामलू जी
(२) कीर्तन के प्रमुख श्री किशनलाल जी और श्री राममूर्ति जी।
(३) लायब्रेरी के प्रमुख श्री ए० नरेश प्रकाश जी।
(४) साहित्य विक्रय के प्रमुख श्री साधु अमृत गोविंद।

प्रभु से हमारी प्रार्थना है कि जीवन जागृति केन्द्र हैदराबाद का ये नन्हा-सा पौधा महावृक्ष होकर सबको शीतल छाया, प्रेम के फूल और आनंद के फल प्रदान करे।

—साधु संतोषानंद (प्रेमदास)
हैदराबाद (आ० प्र०)

बीकानेर में :

आचार्य श्री रजनीश जी के संन्यासी मण्डली के प्रचार की तारीख ६ से ११ नवम्बर, ७१ तक के कार्यक्रम की रिपोर्ट :—

आचार्य श्री रजनीश का एक ध्यान शिविर माह सितम्बर ७१ में माउन्ट आबू पर लगा था, जिसमें विश्वभर के ज्ञान-पिपासुओं ने भाग लिया। हमारे शहर बीकानेर से भी कई लोग उस शिविर में भाग लेने गये। मैं भी अपने परिवार सहित वहां गया। ध्यान शिविर में भाग लिया। उस शिविर में भाग लेने के बाद अनेक लोगों को ऐसा लगा कि यह विचार और कार्यक्रम अच्छा है। इसका अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए। हमारे अनुरोध पर आचार्य श्री ने एक प्रचार पार्टी को राजस्थान के दौरे पर भेजना स्वीकार किया।

तदनुसार स्वामी चैतन्य भारती और मा आनन्द मधु की पार्टी का राजस्थान का दौरा निश्चित हुआ।

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार ६ नवम्बर १९७१ को सुबह ७॥ बजे जोधपुर की गाड़ी से मा आनंद मधु और स्वामी चतन्य भारती की संन्यासियों की टोली बीकानेर पधारी। अगुवाई के लिए मैं अपने परिवार एवं शहर के प्रमुख नागरिकों सहित स्टेशन पर पहुंचा। आगन्तुकों का फूल मालाओं से स्वागत किया गया। उनके ठहरने की व्यवस्था मोहता धर्मशाला के ट्रस्टी रूम (कमरा नं० २) में की गई जो स्टेशन से करीब ही है। आगन्तुकों ने नहा धोकर भोजन किया, फिर थोड़ा विश्राम।

दोपहर ३ बजे मोहता धर्मशाला से नगर संकीर्तन शुरू हुआ। मोहता धर्मशाला से कोटगेट, सार्दुल हायर सेकण्डरी स्कूल, रांगड़ी चौक होते हुए शहर के मुख्य-मुख्य रास्तों से निकला।

नगर में जिस ओर भी ये संन्यासी संकीर्तन करते हुए निकले उधर ही भारी भीड़ जमा हो गई। नागरिकों ने बड़े ही जिज्ञासु भाव से इन्हें देखा, सुना और संकीर्तन में भाग लिया।

अगले दिन ७ नवम्बर से ११ नवम्बर तक नित्य सुबह ८ से १० बजे तक आनन्द निकेतन में प्रवचन, कुंडलिनी जागरण का ध्यान और 'डिवाइन हीलिंग' (प्रभु चिकित्सा) का कार्यक्रम रक्खा गया। ध्यान में भाग लेने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती गई। पहले दिन लगभग २० लोगों ने ध्यान में भाग लिया। यह संख्या बढ़ते-बढ़ते अंतिम दिन ११ नवम्बर को १०० से अधिक हो गई। प्रवचन में लगभग ५०० लोगों से ऊपर सुनने वालों की संख्या रहती थी।

दूसरे दिन दोपहर को ३ बजे फिर नगर संकीर्तन रक्खा गया। आज संकीर्तन कोटगेट से मोहता चौक दूसरे मुख्य रास्ते से गया। नागरिकों ने बहुत ही जिज्ञासा और उत्सुकता से इस कार्यक्रम में भाग लिया।

शाम को नित्य ७ से ९ बजे तक आनन्द निकेतन में प्रवचन होते रहे। प्रवचन के बाद मौन ध्यान कराया जाता था। इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती रही। अंतिम दिन तो भीड़ इतनी रही कि जितने लोग हाल में रहे होंगे उनसे अधिक लोग स्थान के अभाव में बाहर खड़े-खड़े ही प्रवचन सुनते रहे। अंतिम दिन आचार्य श्री रजनीश जी की वाणी का गीता पर एक टेप सुनाया गया। जन-समूह ने प्रसन्नता प्रगट की।

नित्य दोपहर को सम्पर्क के लिए विभिन्न स्थानों का कार्यक्रम रखा जाता रहा। जिसमें डूंगर कालेज, जैन कालेज, रामपुरिया कालेज, महारानी सुदर्शना कालेज, सिटी हायर सेकण्डरी स्कूल इत्यादि जगहों से सम्पर्क साधा गया।

प्रवचन और ध्यान के समय साहित्य बिक्री के लिये बाहर एक स्टॉल लगाया जाता था। कुल मिलाकर लगभग १२०० रु० के साहित्य की बिक्री हुई। इस सम्पर्क से बीकानेर शहर के लोगों में नई चेतना देखने में आई। परिणाम स्वरूप साधु-संन्यासी बनने के लिए लोगों की होड़-सी लग गई और लगभग ३५ व्यक्ति साधु-संन्यासी बने। जैसा उत्साह उमड़ता दिखाई दे रहा था उससे संन्यासियों की संख्या १०० से ऊपर तक चले जाने की संभावना थी; परन्तु माला के अभाव में हमें उसकी मर्यादा रखनी पड़ी।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार संन्यासी मंडल को पिलानी जाना था। तदनुसार तारीख १२ नवम्बर को दिल्ली एक्सप्रेस से सुबह ८ बजे भावभीनी विदाई दी गई। विदाई का दृश्य देखते ही बनता था।

मा आनन्द मधु को नागरिकों के विशेष आग्रह पर एक दिन के लिये रुकना पड़ा। दिनांक १२ को दोपहर में गुजरात मण्डल, डाइरेक्टर शिक्षा विभाग एवं राजमाताजी व विभिन्न संस्थाओं के जिज्ञासु नागरिकों के भेंट का कार्यक्रम रखा गया। पूज्य राजमाताजी के यहां तो बहुत ही स्नेहपूर्ण वातावरण में डेढ़ घंटे तक वार्तालाप का क्रम चलता रहा। इस तरह से जयपुर जाने वाली शाम की गाड़ी तक मिलने-जुलने का बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम रहा। शाम ८–२५ की ट्रेन से मा आनन्द मधु को जयपुर के लिए विदाई दी गई। स्टेशन पर नागरिकों की भीड़ का स्वरूप कीर्तन में बदल गया।

बीकानेर के नागरिकों ने, जिसमें वकील, डाक्टर, बुद्धि-जीवी वर्ग और सर्व साधारण तक सब तबके के लोग आते हैं, आचार्य रजनीश जी की प्रचार पार्टी का जो स्वागत सारे कार्यक्रम में भाग लेकर दिखाया, वह मेरी आशा से अधिक था। इसके साथ ही श्रीमती रतनबाई दम्भाणी के सौजन्य से आनन्द निकेतन जैसा सम्पन्न व्यवस्थित स्थान का मिलना भी इस कार्यक्रम की सफलता में उतना ही सहायक रहा। प्रचार पार्टी ने प्रवचनों, संकीर्तन, वार्तालाप, प्रश्न, उत्तर आदि से जो तत्परता दिखाई वह अवर्णनीय है। इस सब प्रेरणा का स्त्रोत आचार्य श्री की अनुकम्पा व साहित्य रहा।

बीकानेर शहर में जो ज्योति जलाई गई उसे आगे बढ़ाने के लिये हमने जीवन जागृति केन्द्र की स्थापना की है। उसके माध्यम से आचार्य श्री रजनीश जी की सारी प्रवृत्तियों का संचालन किया जायगा जिसमें मुख्यतया ध्यान-केन्द्र, प्रभु-चिकित्सा-केन्द्र, साहित्य-प्रचार, संन्यासियों को दीक्षित करना आदि कार्यक्रम को पहले हाथ में लेना है।

प्रेमसुख तोषणीवाल
संयोजक
जीवन जागृति केन्द्र, बीकानेर

(और प्रस्तुत है नीचे एक पत्र, जो भगवान श्री को लिखा गया, जिससे अजमेर की गतिविधियां स्पष्ट होती हैं।)

प्यारे प्रभु,

प्रणाम।

तेरी अनुकम्पा का खेल देखकर आनन्दित हूं। स्वामी चैतन्य भारती की कीर्तन-मण्डली यहां दिनांक २९ नवम्बर ७१ को शाम को सानन्द कोटा से पहुंची।

दिनांक ३० की सुबह ८ से ९ बजे तक ध्यान प्रयोग का कार्यक्रम रखा गया था। पहले दिन ही भाग लेने वालों की संख्या ५० से अधिक थी। इसलिए बड़ा रूम होते हुए भी जो ध्यान के लिए इकट्ठे हुए थे, स्थान की कमी के कारण बैठकर ही प्रयोग कर सके।

लोग पूरे जोश के साथ प्रयोग में उतरे थे, उसका पता मिला द्वितीय चरण की अभिव्यक्ति के दौरान। अद्‌भुत था अनुग्रह का विस्मित भाव उन चेहरों पर, जिन्होंने स्पष्ट घोषणा की, आनन्द के साथ की। यह जीवन में आनन्दानुभव का क्षण अद्वितीय था।

दूसरे, तीसरे दिन प्रयोग बाहर आंगन में रखा गया जिसमें प्रतिदिन ८०, ९० के करीब लोग भाग लेते थे।

ध्यान के प्रयोग के बाद संकीर्तन मण्डली शहर की सड़कों पर प्रभु को पाने वालों के प्रति अनुग्रह प्रगट करती एवं प्रभु के नाम का कीर्तन करती मस्त झूमती नाचती चल देती थी। आत्म-तृप्ति भरा यह अनूठा कीर्तन नगर वासियों के लिए जहां कौतूहल और जिज्ञासा को उभारने वाला था, वहां इस शहर के मार्गों पर अपने किस्म का निराला, पहले पहल देखा गया ऐतिहासिक दृश्य था।

प्रभु-चिकित्सा का कार्यक्रम सायं साढ़े चार से पांच के बीच सम्पन्न होता था, जिसमें प्रतिदिन ८–१० के करीब रोगी चिकित्सा लाभ प्राप्त करने आते थे।

चार बजे से साढ़े चार बजे तक का समय जिज्ञासुओं के लिए रखा गया था, जिसमें बहुत तरह के प्रश्नों के उत्तर और शंकाओं के समाधान के लिए लोग आते थे।

१ से ४ बजे तक जहां संन्यासी विभिन्न दिशाओं में मार्गों पर तथा स्कूल कालेज एवं अन्य संस्थाओं में साहित्य बेचने निकल पड़ते थे, वहीं इस अवधि में स्वामी चैतन्य भारती और मा आनन्द मधु ने जहां-जहां 'मीटिंग्स अटेंड' कीं उन संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं : गवर्नमेन्ट कालेज, सरस्वती बालिका हायर सेकेन्डरी स्कूल, गुजराती समाज, सेन्ट्रल जेल, रेवेन्यू बोर्ड आदि।

इसके बाद शाम ७ बजे से यहां की नगरपालिका के विशाल हाल में स्वामी चैतन्य भारती तथा मा आनन्द मधु के प्रवचन हुए। ध्यान प्रयोग, संन्यास तथा जीवन में सत्य को कैसे पाया जाये आदि विषय पर बड़े सार गर्भित एवं सार्थक तथ्य लोगों के सामने सहज सुरूचिपूर्ण ढंग से पेश किये गये, जिसका प्रभाव दूसरे तथा तीसरे दिन प्रवचनों में देखने को मिला। मंत्र-मुग्ध

श्रोता नौ साढ़े नौ बजे तक बैठे रहते थे और समापन होता रात्रि ध्यान की विधि के साथ।

सभी कार्यक्रमों में पुरुषों के साथ महिलाओं की उपस्थिति भी अच्छी रही।

तीस व्यक्ति जिन्होंने संन्यास लिया उनमें चार महिलाएं भी हैं।

सबसे महत्वपूर्ण और आनन्द की घोषणा की मा आनन्द मधु ने यहां जीवन जागृति केन्द्र की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास कुदाल (सुप्राम कोर्ट के एडवोकेट), उपाध्यक्ष श्री हनुवन्तसिह जी रावत (आचार्य रावत कालेज) जो संन्यास में भी दीक्षित हुए और संन्यास का नाम हुआ (साधु अनन्त कबीर) तथा सेक्रेटरी के काम के लिए नियुक्त हुए साधु परमानन्द भारती तथा श्रीमती रेखा घोष (उत्साही सामाजिक कार्यकर्त्री)

जीवन जागृति केन्द्र को उचित प्रारूप देकर उसकी गतिविधियों को दिनांक ११ दिसम्बर से सुचारुरूप से चालू की जाने की पूरी चेष्टा की जा रही है जिसके कार्यक्रमों की सूचना दी जायेगी।

आपके प्रेमपूर्ण आशीष की कामना के साथ।

जीवन जागृति केन्द्र में नियुक्त सभी सदस्य आपके अनुग्रहीत हैं। सभी के प्रणाम स्वीकार करें।

परमानंद भारती के प्रणाम
(श्री परमानंद भारती,
C/o श्री पी० डी० कुदाल, एडव्होकेट,
हाथी-पाटा, अजमेर)

●

आवश्यक सूचना

- **देश के युद्ध-स्थिति में एवं 'ब्लेक आउट' आदि होने के फलस्वरूप जन्म-दिवस विशेषांक (पिछला अंक) की छपाई के मध्य आकस्मिक व्यवधान आये, अतः कुछ सामग्री विवश हो छोड़नी पड़ी जिसे हम अब अपने जनवरी '७२ के अंक में अतिरिक्त रूप में दे रहे हैं।**

- **कृपया अपने संस्मरण, ध्यान व संन्यास के अनुभव आदि प्रकाशनार्थ भेजा करें। रचना-सामग्री साफ अक्षरों में, पृष्ठ के एक ओर, डबल स्पेस में और हाशिया देकर ही प्रेषित करें, ताकि प्रकाशन में असुविधा न हो।**

—सम्पादक

In this PDF, at least the inside back-cover and back-cover are missing.

संकीर्तन मंडली कार्यक्रम

मध्यप्रदेश में भगवान श्री के आनंद और प्रेम के संदेश को जनमानस तक पहुंचाने के लिए संकीर्तन मंडली का निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किया गया है। आप इसमें पूर्ण सहयोग करेंगे, ऐसी कामना के साथ।

स्थान	दिनांक	संयोजक
१. रायपुर	२३, २४, २५ जनवरी ७२	—
२. कटनी	२७, २८, २९ जनवरी ७२	—
३. सागर	३१ जनवरी, १-२ फरवरी ७२	स्वामी अमित चैतन्य, साधना-साड़ी केन्द्र, परकोटा, सागर
४. जबलपुर	४, ५, ६ एवं ७ फरवरी ७२	स्वामी आनंद विजय पुष्प, कटपीस भवन, जवाहरगंज, जबलपुर
५. नैनपुर	८ एवं ९ फरवरी ७२	श्री कल्याणदास जी खंडेलवाल, नैनपुर (म० प्र०)
६. छिंदवाड़ा	११–१२ फरवरी ७२	—
७. अमरवाड़ा	१४–१५ फरवरी ७२	स्वामी आनंद सागर, मुख्य मार्ग : अमरवाड़ा
८. सिंहपुर (नरसिंहपुर)	१७–१८ फरवरी ७२	श्री कंछेदीलाल जी शुक्ला, व्याख्याता : सिंहपुर
९. गाडरवारा	२०–२१–२२ एवं २३ फरवरी ७२	साधु योग प्रफुल्ल, C/o श्री खूबचंद हजारीलाल गाडरवारा
१०. पिपरिया	२५–२६ फरवरी ७२	—
११. बाबई	२७–२८ फरवरी ७२	स्वामी स्वराज्यानंद समर्थ, बाबई
१२. होशंगाबाद	२, ३, ४, ५ मार्च ७२	मा योग भक्ति, C/o श्री आर० के० फौजदार बस सर्विस, होशंगाबाद
१३. ग्वालियर	८, ९, १० एवं ११ मार्च ७२	—